
झाँसीकीरानी

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

झाँसी की रानी

: महाकाव्य

★

श्यामनारायण प्रसाद

★



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी-१

मार्च : १९६४

मूल्य
पाँच रुपये मात्र

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉक्स नं० ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी-१

मुद्रक
राष्ट्रीय प्रेस
सी ७/१२१ बी, सेनपुरा
वाराणसी-१

परम पूज्या

रानी झोंगी देवी जी बिड़ला

को

सादर समर्पित

—श्यामनारायण प्रसाद

परिचय

महारानी ! समय की गति में जब तेरी यह हुंकार गूंजती रहती थी कि स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसके लिए यदि शोणित की सरिता लहरानी होगी तो लहरा दूँगी, मुण्डों का पहाड़ बनाना होगा तो बना दूँगी, कबन्धों की सीढ़ी बना कर विजयध्वज को अम्बर के मस्तक पर फहराना होगा तो फहरा दूँगी, इतना ही नहीं यदि नश्वर शरीर की आहुति से ही इस महा यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली होगी तो वह भी सहर्ष स्वीकार है। पत्ता-पत्ता तेरे संदेश को सुना रहा था कि स्वतन्त्रता का पुजारी कटार की धार को कोमल पथ-धूल समझ कर दुर्दम अनल की लपटों को फूलों का मधुर-सुहास समझ कर अथाह समर-सिन्धु को गो-पद प्रमाण सम मान कर कल्याणमय प्रशस्त पथ पर प्राण-सुमनों से अर्चना की थाली सजा कर जय-जयकार करता हुआ देवी की आराधना के लिए विहँसता हुआ आगे बढ़ता है। विघ्न-बाधायें चेरी बन कर उसका पद चूमती हैं। उसके लिए मेदिनी अमरावती है। हाथ का कृपाण वज्र है। पक्षियों के कलरव में तेरा यह उपदेश गूँजता रहता था कि स्वतन्त्र वीरान-प्रदेश पराधीन अभ्रभेदी प्रासादों से श्रेष्ठ है। आजादी का नारा लगाने वाले निर्झर का शीतल पानी पराधीनता के सुगन्धित पदार्थों से वासित जल से सहस्र गुना पेय है। स्वतन्त्र-प्यासों की रोटी परतन्त्र षट्रस व्यंजनों से स्वादिष्ट है। तेरी विजय-ध्वनि से यह राग गूँजता रहता था कि 'सत्य सङ्कल्प ही विजय का प्रथम जयघोष है। तब मानस गद्गद् हो उठता था। अंग-अंग फड़कने लगता था। लेखनी तलवार बन जाना चाहती थी लेकिन वह शैशवावस्था थी। पाँवों में लड़खड़ाहट थी हाथों में कम्पन था। मानस-पटल पर असमर्थता गरजती रहती थी। आज टूटे-फूटे शब्द रूपी सुमनों से कीर्ति माला पिरोने का प्रयत्न कर रहा हूँ। क्षमा याचना सहर्ष स्वीकार हो।

राजमाता ! तेरा वात्सल्य पड़ोसी के नाम से विभूषित था जिसमें वीरत्व शैशव की कोमलता के आँचल से झाँक रहा था। निर्भीकता रोम-रोम में बस

रही थी। नस-नस में वीर रस लहरा रहा था। बिठूर के बाहर नाना साहब और राव साहब के साथ पतित-पावनी-गंगा के रम्य पुलिन पर तेरी घोड़े की सवारी बता रही थी कि भविष्य में तेरा क्या रूप होगा? घुड़दौड़ में नाना साहब का घोड़े पर से गिर जाना और शीघ्र ही घायल साथी को घोड़े पर बग़ कर एक हाथ से उसको पकड़े हुए और दूसरे से लगाम सम्भालते हुए तीव्र गति से किले को लौट आना तेरे अश्वारोहण की परीक्षा थी। दूसरे दिन सन्ध्या के समय नाना साहब का दूसरे लड़कों के साथ हाथी पर बैठ कर घूमने के लिए बाहर निकलना और तेरा मचल-मचलकर हाथी पर चढ़ने के लिए रोना इस पर सान्त्वना देते हुए पिता मोरोपन्त का कहना कि बेटी! तेरे भाग्य में हाथी नहीं है। इस पर तुम्हारी सत्यपूर्ण भविष्यवाणी एक नहीं दस हाथी मेरे भाग्य में हैं बता रही थी कि तुममें कितना आत्मबल और सत्य-संकल्प था। उस समय तेरी आयु १२ १३ वर्ष की थी और नाना साहब की १५ १६ वर्ष की।

गंगाधर राव झाँसी के सिंहासन पर आरूढ़ अवश्य थे, लेकिन स्वत्व उनके हाथ से धीरे धीरे खिसक चला था। राज्य का कामकाज अंग्रेज रेजिडेण्ट करता था। राजा की आयु चालीस वर्ष के करीब हो चली थी, वे सन्तानहीन थे। रानी यौवनावस्था के प्रथम सोपान पर पग रखते ही दुनिया से चल बसी थी इस लिए राजा चिन्तित रहा करते थे। जीवन की आशा मुरझाती जाती थी। तूने उन्हें गले से लगाकर मानस की मुरझाई कलियों को फिर से हरा-भरा बना दिया। फिर से नव जीवन आ गया। तुम्हें रनिवास में बैठ कर दासियों के बीच विलासिता में ऊँघना पसन्द न था अलंकारों से विभूषित मेंहदी की लाली में वासनामयी सौन्दर्य की प्रेमिका बनना पसन्द न था। तुम्हारी बाल सहेली तलवार थी। भाले प्यारे मधु थे और अखाड़े का मिट्टी अंगराग थी। तुम्हारे हृदय में अंग्रेज रेजिडेण्ट का शासन खटक रहा था। अंग्रेजों के साथ वह संधि पत्र जिसमें राज्य का प्रथम अंश अंग्रेजी फौज के खर्च के लिये चला गया था कलेजे में काँटे की भाँति चुभ रहा था। उसी मर्मस्थल के काँटों का निकालने के लिये रनिवास में नारी-सेना बना रही थी। दासी सुन्दर, मुन्दर और काशी

भाई के साथ तुम्हारा सहेली का सा व्यवहार था। वे दासियाँ जो फूल से भी कोमल थीं पत्थर सा कठोर बनने को तैयार हो गईं। जो शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से चमचमाता रहता था वह बरछी भाले, तीर और कटारों से दमदमा उठा। जो केश भाँति भाँति के रंग-बिरंगे फूलों से सजे रहते थे अब अखाड़े की शक्तिदायिनी मिट्टी में लहराने लगे। जो सखियाँ अपने पति के अतुलित प्यार के लिये लालायित रहती थीं वे रण निमंत्रण की राह देखने लगीं। यह तेरे सच्चे हृदय के घोर मंत्र का ही प्रभाव था कि मुर्दे भी हाथ में तलवार उठा लेना चाहते थे। हड्डियों से क्रोधाग्नि धधकने लगती थी।

मातेश्वरी! जीवन में सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख अवश्य म्भावी है। वसुधा वसन्त की गुदगुदाहट से हँस कर ग्रीष्म की लपटों में चीत्कार कर उठती है। पावस की हरियाली में लहरा कर शीत के थपेड़ों से आक्रान्त हो कौंप उठती है। यदि तेरे यौवन के वसन्त में ग्रीष्म की ज्वाला धधक उठी तो चिन्ता का विषय नहीं। चिन्ता का विषय तो था तेरे दुधमुँहे लाल का तीन मास की आयु में आँखों से ओझल हो जाना। पर इसमें वश किसका? इसी से कहा जाता है कि दैव निष्ठुर है पुत्र शोक की असह्य वेदना से झाँसी के सूर्य भी अस्त हो गये। रह गया घर में दीपक की भाँति टिमटिमाता बालक दामोदरराव जिसे राजा ने मरने के पहले ही गोद ले लिया था। वही तेरे हृदय के घाव को भरे हुए था लेकिन शत्रु के गोद अस्वीकार करते ही वह पुनः पुरवा हवा लगने की भाँति हरा हो गया। तू सिर मुंडा कर तपस्विनी की भाँति काशी की यात्रा करना चाहती थी लेकिन अंग्रेजों ने इसे अस्वीकार कर दिया। इस पर तेरा भवानी का साकार रूप धरा पर धमक उठा और तू प्रलय के मेघ की भाँति गरज उठी, "जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होगा मैं बाल नहीं कटाऊँगी" तेरी यह अमरवाणी अम्बर के अन्त पट में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गई।

विजये! तू स्वतन्त्रता का झण्डा उठाने के पहले कण-कण में वीर-मन्त्र फूँकने के पहले, राख में दबी मरणासन्न अग्नि को पुनः हुंकार का सहारा देकर जगाने के पहले यह देखना चाहती थी कि जाति में कितना बल है। धर्म

में कितना हृदय है और समाज में स्वतन्त्रता, आत्मगौरव और देशोत्थान के लिये शोणित का सागर लहरा कर जीवन की बाजी लगा देने का कितना साहस है। कितना आत्मबल और पुश्तैनी रवानी है। पुत्र दामोदर राव के यज्ञोपवीत द्वारा क्रूर शत्रुओं की आँखों में धूल झोंक कर स्वच्छ जल के तल की भाँति देख लेना तेरी ही बुद्धि की बलिहारी थी।

पूज्ये! सुन्दर मुन्दर और काशीबाई सखिया के साथ पवन को भी गति की शिक्षा देनेवाले घोड़े पर सवार होकर काल-सर्पिणी सी फुफकारती बेतवा नदी के विशाल दुर्जेय वक्षस्थल को चीरती हुई विघ्न बाधाओं के मर्मस्थल को दलदल की भाँति कँपाती हुई पावस के हरित प्रभात के गात पर लोहिताक्षरों में सुरमा की कहानी लिखती हुई सिसनी के घोर जंगल में, जिसमें दिन पर रात की, प्रकाश पर अन्धकार की और तुमुल कोलाहल पर नीरवता की विजय पताका फहराती रहती थी, रहनेवाले डाकू सागर सिंह की कमर में हाथ डाल कर जीते जी पकड़ लेना तुम्हारी जैसी वीरा को ही सुलभ था। वीर सागर सिंह के स्वार्थपूर्ण क्रूरता से भरे हृदय को देशाभिमानी बना देना प्रधान सेना पति के रूप में अपनी जाति धर्म की स्वतन्त्रता के लिये मर मिटने का अदम्य उत्साह भर देना तेरे ही बाहुबल और बुद्धिबल का कौशल था।

राजेश्वरी! दिल्ली के अन्तिम सम्राट्, स्वतन्त्रता के प्रथम जयघोष सुनाने वाले वृद्ध बहादुरशाह की एलान ऐ हिन्दुस्तान के बाशिन्दो! अगर हम इरादा कर लें तो बात की बात में दुश्मनों का खात्मा कर सकते है। हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने देश और अपने धर्म को जो हमें अपनी जान से भी प्यारे हैं खतरे से बचा सकते है। हिन्दुस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो! उठो! भाइयो उठो! खुदा ने जितनी बरकतें इन्सान को अता की हैं क्या वह जालिम मायाक जिसने धोखा दे-देकर ये बरकतें हम लोगों से छीन ली हैं हमेशा के लिये हमें उससे महरूम रख सकेगा? क्या खुदा की मरजी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं नहीं फिरंगियों ने इतने जुल्म किये हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज हो चुका है। यहाँ तक अब हमारे पाक मजहब को नाश करने की नापाक ख्वाहिश भी उनमें पैदा हो गई है। क्या तुम

अब भी खामोश बैठे रह सकोगे ? खुदा अब यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिमा में अंग्रेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश पैदा की है और खुदा की फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अंग्रेजों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका जरा भी निशान न रह जायगा। हमारी इस फौज में छोटे और बड़े की तमीज भुला दी जायगी और सब के साथ बराबरी का बरताव किया जायगा क्योंकि इस पाक जंग में अपने धर्म की रक्षा के लिये जितने लोग तलवार खींचेंगे वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई-भाई हैं उसमें छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं इसलिये मैं फिर अपने तमाम हिंदू भाइयों से कहता हूँ उठो और ईश्वर के बताये हुए इस परम कर्तव्य को पूरा करने के लिये मैदाने जंग में कूद पड़ो। तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम हम महज अपना धर्म समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं। इस मौके पर जो कोई कायरता दिखायेगा या भोलेपन के कारण दगाबाज फिरंगियों के वादों पर एतबार करेगा वह शीघ्र ही शरमिन्दा होगा और इंगलिस्तान के साथ अपनी वफादारी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा जैसा अवध के नवाब को मिला। इसके अलावा इस बात की भी जरूरत है कि इस जंग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का व्यवहार करें जिससे अमनो-आमान कायम रहे और गरीब लोग सन्तुष्ट रहें तथा उनका अपना रुतबा और उनकी शान बढ़े। जहाँ तक मुमकिन हो सकता है सबको चाहिये कि इस एलान की नकल करके किसी आम जगह पर लगा दें।' तेरे रोम-रोम में महत्वाकांक्षा जाग रही थी। बीबीगढ़ में वसुन्धरा की छाती पर गोरी मेमों और बच्चों के खून के पड़े धब्बे को जबरदस्ती ब्राह्मणों की जीभ से चटवाना और चटवा कर साफ करा कर फाँसी के तख्त पर झुला देना तेरे हृदय में धर्म की रक्षा के लिये आततायियों के प्राणों की होली जला देने का दुर्दम्य क्रोधाग्नि जगा रहा था।

अमजाला आज भी शून्य में रणभेरी बजा-बजा कर मंत्र फूंक रहा है

और मेग्ना से पागलों की भाँति कह रहा है कि क्रूर आततायी कूपर ने सड़ सीली इमारत के सौ गज के गुम्बज में छयासठ निर्दोष असहाय हिन्दू और मुसलमान स्त्री-बच्चों को बन्द किया था। जेठ की ज्वालामयी रात थी। वे बिना पानी और हवा के तड़प-तड़प कर चल बसे। जो शेष बचे उनको जाति-द्रोही धर्म-नाशक दूसरों के अन्न पर पलनेवाले कुत्तों ने गोली का निशान बना डाला। मेदिनी काँप उठी गगन हाहाकार कर उठा। इतना ही नहीं अधमरे लोगों को एक छोटे से सँकरे कुएँ में डाल कर ऊपर से मिट्टी से बिल्कुल ढक दिया। इन सब घटनाओं के सुनते ही तेरी क्रोधाग्नि अनन्त को चूम लेना चाहती थी। अदम्य उत्साह भरा रोम रोम का कम्पन दिगन्त को कँपा देना चाहता था। वक्र भृकुटि प्रलय मचा देना चाहती थी। तेरी काल सर्पिणी सी फुफकारती तलवार भवानी की जीभ सी लपलपाती अरि-दल के हृदय-सिन्धु में लहराते शोणित को जेठ की तपती मरीचिका की भाँति पान कर जाना चाहती थी। तू समय के सूत्र में अनुभवों की माला पिरो रही थी। तू उन अगणित तलवारों की रवानी के पानी से धोकर सत्य संकल्पमय हुंकारों के ताप से [illegible] कर रही थी। देख रही थी उस बेला को जब एक एक बूँद खून के ऊपर भारत के सहस्र सपूतों के कल-कण्ठों से विजय ध्वनि दिगन्त का बधिर बनाकर अरि-उर-जलद-पटल को कदली के पत्ते के समान कर-कर काटती हुई अनन्त में विलीन हो जायगी। तू समर-सिन्धु को पीने के लिये अगस्त्य से वरदान माँग रही थी। विघ्नों के तम-तोम को निगल जाने के लिए भगवान् अंशुमाली से प्रकाश माँग रही थी। जाति की रक्षा के लिये सम्राट् से शत्रु के सीने में कटार भोंक देने के लिये माता के आँचल में सोई कर्णवती को जगा रही थी। वीरों की अमर कहानी सुनने के लिये दिवंगत राजमाता जीजाबाई को विवश कर रही थी। झंझावात के विकट गर्जन में रूप कुसुम के मधुर मुसकान को चिर नवीन बनी रहने के लिये देवल देवी की आराधना कर रही थी।

सर्वमंगले! दीवाने-खास के पर्दे के दूसरी ओर रणचण्डी का रूप दमदमा रहा था। सामने कुर्सी पर बालक दामोदरराव आश्चर्य में डूबा हुआ बैठा था। बगल में मंत्री गण और दरबारी विराजमान थे। दायीं ओर पिता मोरोपन्त

आश्चर्य और कौतूहलपूर्ण नेत्रों से मालकम की ओर देख रहे थे। मालकम ने जेब से कागज निकाला और रानी के प्रतिकूल डलहौजी का घोषणा-पत्र पढ़ सुनाया जिसको सुनते ही पिता पन्त के मुँह से निकला 'अनर्थ हुआ' दरबारियों ने कहा 'अनहोनी बात है।' बालक दामोदरराव भी समझने का प्रयत्न किया लेकिन बालपन की चपलता के कारण समझ न सका कौतूहलपूर्ण आँखें ऊपर देखती रह गईं। परदा हिला, पीछे से बिजली सी कड़क हुई। "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी" मेदिनी थरथरा उठी, मालकम की छाती धड़क उठी। वायुमण्डल ने अपने मर्मस्थल के घाव को उस वाक्य रूपी मलहम से अच्छा किया। भारतखण्ड के इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया। नगाधिराज के मस्तक पर के चमचमाते मुकुट में मुक्ता की माला बन कर चमक उठा। भय के मारे मालकम की पेशानी से पसीना टपकने लगा। काँपता हुआ तीन डग में ही दीवाने खास से बाहर चला गया।। इसके बाद वीर सपूतों के मानस में ऐसा वीर मंत्र गूँजने लगा कि आज फिर से जाग उठने का समय है। यदि स्वतंत्रता देवी की आराधना के लिए एक इंच भी भूमि न मिले तो वायु में ज्वाला बन कर लहराना है, जलद में बिजली बन कर मुसकाना है और अचल सम धातु के ऊपर वज्र बनकर गहराना है। अब कुम्हते बाहु से माता की बिखरी लड़ियों को पुनः प्रेम-सूत्र में पिरो कर अर्चना के लिये महत्वाकांक्षाओं की माला पिरोनी है। सन्ध्या की मुरझायी हुई फुलवारी को फिर से हृदय रक्त से सींच कर हरा भरा बनाना है। इस वीर मंत्र को पवन गुनगुनाता हुआ चारों ओर बिखरने लगा। डाल-डाल की शाखाओं पर पक्षियों ने यशोगान गाया। दिशायें मुसकरा उठीं।

धर्म-रक्षिके! जिस समय तू झाँसी के वीर सपूतों में मंत्र फूँक रही थी उसी समय नत्थे खाँ का सन्देश मिला कि झाँसी पहले ओरछा का अंग रहा है यह अनुचित रीति से ओरछा से हड़प लिया गया है अब उसे वापस कर देना चाहिये। यह संदेश सारे नगर में बिजली की भाँति फैल गया। इसी के साथ ही साथ यह भी खबर फैल गई कि वह बीस हजार सेना लेकर झाँसी पर हमला भी करने आ रहा है। झाँसी के सभी कर्मचारी घबड़ा गये, क्योंकि सेना पूर्णरूप

से तैयार न हो पाई थी। यह सन्देश मातेश्वरी! तेरे कानों में पड़ा मानस कमल की भाँति विहँस उठा राम रोम फड़क उठा म्यान में तलवार तमतमा उठी। गुरु मोघटकर का यह वाक्य कि युद्ध प्रारम्भ करने से पहले अपने झण्डे के साथ-साथ यूनियन जैक रखा जाय' इस पर तेरा यह अदम्य उत्साह कि मेरा गेरुआ झण्डा सबसे ऊपरी बुर्ज पर रहेगा। यूनियन जैक नीचे की किसी भी बुर्ज पर रख दिया जा सकता है—बता रहा था कि कितना बड़ा स्वदेशाभिमान हृदय में भरा है। विघ्नों का पहाड़ चुटकी बजाकर उड़ा देने का कितना पौरुष विशाल बाहुओं में भरा है। जाति अभिमान का कितना बड़ा ताज सिर पर चमचमा रहा है अथाह सागर की भाँति कितनी अनिर्वचनीय धीरता हृदय में विहँस रही थी। अनन्त चतुर्दशी का दिन था मातेश्वरी! तेरा दिन भर का उपवास था। अभी दो चार ग्रास ही फलाहार कर पाई थी कि इसी बीच खबर मिली कि नत्थे खाँ का गोला टकसाल के पीछे एक सेठ के मकान में गिरा है। फलाहार थाली में ही पड़ा रह गया। तू वीर वेष में तुरन्त घोड़े पर सवार होकर अपनी दीनों सखियों को साथ ले ओड़छा फाटक पर आ पहुँची। गुलाम गौस खाँ में मन्त्र फूँकने लगी, "शत्रु इसी ओर है गोलों की वर्षा लगातार करना। इसी भाँति सखियों के साथ हवा में उड़-उड़ कर सभी फाटकों के गोलन्दाजों को सावधान करने लगी। नत्थे खाँ की सेना और तोपों को दूसरी बाढ़ दागने भी न पाई और किले के तोपों की प्रलयाग्नि गगन चूमने के लिये बढ़ चली। अरि-सेना फतिंगों की भाँति जल-जल कर राख होने लगी। अन्तरिक्ष चीत्कार कर उठा। पवन थर-थर काँपने लगा, मेदिनी डगमगा उठी। तू काल-सर्पिणी की जिह्वा की भाँति लपलपाती तलवार हाथ में ले सखियों के साथ शत्रु-सेना पर उल्कापात सदृश टूट पड़ी। बात की बात में लाशों के ढेर एकत्र हो गए शोणित की सरिता धरा श्यामला के अंचल को रंजित करने लगी। नत्थे खाँ को होश आया मैं किससे लड़ रहा हूँ? यह तो साकार भवानी है और जान लेकर मैदान से भाग खड़ा हुआ। अम्बर के मस्तक पर झाँसी की विजय पताका फहराने लगी।

तेरी इस विजय से शत्रु के कान खड़े हो गये। तेरा अदम्य उत्साह, अजेय पौरुष अतुलनीय निर्भीकता और वीरता अंग्रेजों के हृदय में टीस पैदा करने

लगी। तेरे इस संग्राम को देख अंग्रेज समझ गये कि रानी अकेले ही स्वतन्त्रता संग्राम का यंत्र संचालन कर सकती है। तेरा अपनी सखियों को साथ ले नरपे खाँ का बीस हजार सेना के ऊपर टूट पड़ने का साहस और दुर्जेय आत्म बल शत्रु के हृदय में शंका उत्पन्न कर दिया कि किसी समय रानी हमलावरों के सीने में भी कटार भोंक सकती है। ताज को पैरों से रौंद सकती है, मुनियम जक को पर के नीचे कुचल कर अम्बर के मस्तक पर गेरुआ झण्डा फहरा सकती है। किसी न किसी बहाने से अंग्रेज तेरे इस उत्साहपूर्ण शौर्य को आजमाना चाहते थे। भवानी! तुमसे अंग्रेजों की यह कूटनीति छिपी न रह सकी। भला स्वच्छ जल में तल की कीचड़ छिपी रह सकती है यह कौन सी आकृति है जो दर्पण के सामने अपने को अलक्ष रख सके। दूसरे दिन दीवाने खास में माता के वीर सपूत जवाहर सिंह और रघुनाथ सिंह बुलाये गये। राजेश्वरी! तू अपने स्वतन्त्रता-संग्राम के कार्य को और तेज करना चाहती थी। दोनों वीर सपूतों को आज्ञा मिली तोपें ऐसी ढाली जायें जो न तो पीछे धक्का दें और न जल्दी गरम ही हों। विनीत भाव में उत्तर मिला, श्रीमतीजी बख्शीजी की निपुणता से ऐसी ही तोपें ढाली जा रही हैं। पुन प्रश्न हुआ और बारूद? उत्तर मिला, 'तीन महीने के युद्ध के लिये तैयार है। आप किसी बात की चिन्ता न करें। सभी सामान पूर्ण रूप से तैयार हो रहा है और तैयार भी है।' रानी! तेरे मुख-मण्डल पर सन्तोष की रेखा चमक उठी, पवन में यह ध्वनि लहराने लगी कि मैं भी अपनी सखियों और अन्य झाँसी की नारियों को शस्त्र-संचालन और गोलन्दाजी की शिक्षा दे रही हूँ। इसी बीच अंग्रेजों का दूत पत्र लेकर पहुँचा उसमें लिखा था "रानी! शायद छिपे-छिपे विप्लवकारियों का साथ दे रही है। यह विश्वासघात है। वे निरस्त्र मेरे यहाँ चली आवें इसी में उनकी भलाई है"। पत्र पढ़ते ही भवानी! तेरा खून खौल उठा, चेहरा तमतमा उठा, शत्रु को उत्तर मिला, "भारतीय नारी कभी भी किसी पर पुरुष का विश्वास नहीं करती और न तो निरस्त्र किसी से मिलती ही है। यदि आज्ञा हो तो मैं श्रीमान की सेवा में अपने अंगरक्षकों के साथ उपस्थित होऊं। इतना कह कर पुनः बुर्जों पर आकर तोपें रखवाने

लगी। २० मार्च को सवेरे झाँसी के पूर्व-दक्षिण कामासिन देवी की टोरियों के पीछे लगभग तीन मील के अन्तर पर असंख्य तम्बू तनने लगे। आड़ में असंख्य तोपें दिखाई जाने लगीं। राजरानी! तेरी दूरबीन के सम्मुख छिपा न रह सका। सारी झाँसी नगरी में कोलाहल मच गया। अवसर पाकर नगर की विकराल तोपें गरज उठीं। तू भी अपनी प्राण प्यारी सखियों के साथ घोड़े पर सवार होकर युद्ध संचालन करने लगी। बात की बात से झाँसी के बाहर कबन्धों के ढेर टीले बनाने लगे। सारे गगन में धुंआ ही धुंआ हो गया। दिन में अमावस्या की कालिमा छा गई। चक्रवाक अपनी प्रियतमा से अलग होने लगा पक्षीगण अपने-अपने नीड़ों को लौटने लगे शृगाल तारस्वर में निशाचरों का जय जयकार करने लगे। पिशाचिनी हाथ में खप्पर ले लेकर अट्टहास करती हुई विचरने लगी पुनः भाग्य का सूर्य चमकने लगा। भारत की निराशा का अन्धकार लापता हो गया। विजय-पताका अनन्त के मस्तक पर फहरा उठी। शत्रु जनरल की आशा पर पानी फिर गया। अपनी उँगलियों पर गिनने योग्य सेना लेकर शिविर को लौट आया।

क्या तू नहीं जानती थी कि स्वतन्त्रता संग्राम के प्रथम सेनानी वीर केशरी शिवाजी को औरंगजेब की कैद में डलवाने वाला अपना ही अधम कृतघ्नी था। रण-पुंगव सिसोदिया कुल-भूषण महाराणा प्रताप को जंगल की खाक छनवाने वाला सगा सहोदर शक्तिसिंह ही था। चन्देल वंश-अवतंस पृथ्वीराज की आँखें निकलवाने वाला स्वयं फुफेरा भाई जयचन्द था। मेवाड़ केशरी रत्नसिंह को कैद करा कर त्रलोक्य सुन्दरी लज्जा की साकार प्रतिमा पातिव्रत की मूर्ति रानी पद्मिनी को जौहर के हुताशन के आसन पर बठा देने वाला अपना ही मन्त्री राघव चेतन था। भारतेश्वरी! भूल हो गई जो न समझ सकी कि स्वच्छ जल के नीचे भी कीचड़ होता है, विश्वास कर बैठी नमक हराम लुर्के पीरअली और जाति के कलंक दूल्हाजू का जो अंग्रेजों से मिले हुए थे। छिपे-छिपे किले का सारा भेद दे रहे थे। इतना ही नहीं जाति द्रोही दूल्हाजू ने दो हाथ में गंगाजल लेकर ओड़छा फाटक खोलने की कसम भी खा ली थी केवल दो गाँव की जागीर मिलने की लालच से।

पुन दूसरे दिन पौ फटी। भगवान् अंशुमाली का तमतमाया चेहरा दिखाई पड़ा। आज की क्रोधाग्नि विचित्र थी। पता नहीं, शायद रात्रि के उन देशद्रोहियों और कुलद्रोहियों से शत्रु के मिलने और ओड़छा फाटक खोलने की शपथ को सुन कर। रानी शत्रु के गोलों से नष्ट हुए किले की मरम्मत करवा रही थी। बुर्जों पर तोपें और गोले रक्खे जाने लगे। रण का बिगुल बजा, दमामे गरजने लगे। गोलों का जवाब गोले देने लगे। गगन थरथरा उठा, मेदिनी कांपने लगी, दोनों ओर के सेनानी अपना अपना रण-कौशल दिखलाने लगे। शाम हो चली लेकिन किसी की विजय-पताका आकाश में न उड़ी। अंग्रेजों के जान माल की बहुत बड़ी क्षति हुई। निद्रा मरे हुए वीर सपूतों के ऊपर आंसू के कण बिखरती हुई घने भीगे सिरहानियों को ओसकर सहला कर सुलाने के लिये आकाश से उतर पड़ी, लेकिन उन रण मतवालों को आराम कहाँ? उनको तो आराम मिल रहा था शत्रु के कबन्धों की ढोली बना कर स्वर्ग चढ़ने में और अरि सिर का गेंद खेलने में। उस रात्रि में सखी सुन्दर का दूल्हाजू को कुकुम सौंपी गई। गोलन्दाजी में वह दूल्हाजू की ही शिष्या था। सन्ध्या के बाद सुन्दर ओरछा फाटक पर आ डटी। दूल्हाजू आराम करने चला गया। दूसरे दिन फिर काम पर आ गया। अंग्रेजी सेना फाटक के सामने डटी हुई थी। सन्ध्या हो चली थी सुन्दर अपने स्थान पर आ पहुँची जिसको दूल्हाजू ने नहीं देखा। गोरी सेना ने पीछे से लाल झंडा दिखाया। दूल्हाजू नीचे उतर कर लोहे का एक बड़ी सब्बल लेकर फाटक के ताले तोड़ डाले, इस बात का सुन्दर ने देख लिया, तलवार लेकर गरजती हुई उसके सामने पहुँची। सामने डटकर खड़ी हो गई और धिक्कारने लगी, "नीच! आततायी क्या रानी के विश्वास का जवाब दे रहा है तुझे क्या मिलेगा इतना बड़ा अनर्थ करने में?" इस पर भी वह न माना। सुन्दर ने उसके ऊपर तलवार का वार किया। उसको उस कृतघ्नी ने लोहे की सब्बल पर रोक लिया। तलवार टूक-टूक हो गई। उस नीच ने उस वीरांगना के सीने में सब्बल का कोंचा मारा निशाना अचूक था। इसी बीच अंग्रेजी सेना भी फाटक घुसने से गरजती हुई किले के भीतर घुसी। पर

सिपाही की गोली आहत सुन्दर को लगी। वह उसी स्थान पर रानी का जयजय कार करती हुई ढेर हो गई। दुश्मन की सेना गरजती हुई किले में घुस गई। देखते ही देखते मुहल्लों की होली जल उठी।

तू अच्छी तरह जानती थी कि जला हुआ अस्तबल फिर से बनवाया जा सकता है। महल के भग्नावशेष को बनाने वाले फिर से पदा हो सकते हैं। उजड़े हुये मुहल्ले फिर से बसाये जा सकते हैं लेकिन विशाल पुस्तकालय जिसमें वेद पुराण इतिहास काव्य और अरबी-फारसी की हस्तलिखित प्रतियाँ जिसकी नकल करने के लिये अन्य देशों से विद्वान् आते थे अब कहाँ मिलेंगी? इन जले हुये ग्रन्थों के रचयिता कहाँ मिलेंगे? यह सोचकर तू पागल हो उठी। तुझे पति और पुत्र का मरना भी धर्म-क्षेत्र से विचलित न कर सका। प्राण प्यारे किले का जलना भी न डिगा सका। जो मानस विघ्न-बाधाओं में कमल की भाँति खिल उठता था वही पवन से ताड़ित कदली के पत्ते के समान हो गया और तू नादान दुधमुँहे बच्चे की तरह बिलख बिलख कर रोने लगी। धर्म तेरा प्राण था और धर्म-ग्रन्थ जीवन। धर्म-ग्रन्थों का भस्म होते देख तू भी स्वयं बारूद में आग लगा कर भस्म हो जाना चाहती थी लेकिन धर्म गुरु ओपटकर के मन्त्र से तुम्हारी प्रज्ञा का कपाट खुला।

तुझे धर्मगुरु के बताये हुये गुप्त मार्ग से निकल कर प्राण बचा लेना पसन्द न था कायरों की भाँति छिप कर लक्ष्य तक पहुँचना पसन्द न था। वीरोचित मार्ग जानती थी उस पर चल भी चुकी थी, इसलिये अर्धरात्रि में गगनचुम्बी अग्नि की लपटों को चीरती हुई सदर फाटक से निकल कर दुश्मन की छाती पर पैर रखती हुई कालपी की ओर चल पड़ी। पीठ पर बालक दामोदरराव बधा हुआ था। सिर पर पूर्वजों का पावन ताज चमचमा रहा था हाथ में धर्मगुरु की दी हुई धर्म-रक्षा की तलवार काल-सापिनी तलवार लपलपा रही थी। पवन को भी गति की शिक्षा देने वाला चंचल अश्व अम्बर में उड़ा चला जा रहा था।

सुअवसर का परख और जीवन की सार्थकता समझने वाली धर्म रक्षा और मातृरक्षा की प्राण रक्षा के लिये अपनी उमड़ती जवानी का भस्म करके औषधि

बनाने वाली तपस्विनी थी, झलकारी कोरिन आधी रात में रानी के सदर फाटक से निकल जाने के बाद लक्ष्मीबाई के समान वेश में वैसे ही घोड़े पर सवार होकर फाटक के बीच शत्रु से आ जूझी। अंग्रेज उसको ही रानी समझकर उस पर टूट पड़े अकेली झलकारी की तलवार शत्रु के सहस्रों करवालों में कब तक चमकती, अन्त में अन्तर्हित हो गई।

तू अगम्य पहाड़ों की चोटियों को लाँघती हुई, घोर जंगलों की निबिड़ता को चीरती हुई कालपी की ओर बढ़ी जा रही थी। घोड़े के टापों के आघातों से शिला-खण्डों की चिनगारी रूपी जिह्वा बाहर निकल पड़ती थी। केवल जुगनू का लघुप्रकाश ही अन्धकार का हृदय वेधता हुआ पथ प्रदर्शक का काम कर रहा था। जंगली जन्तु अपनी अपनी माँदों को छोड़ बच्चों के साथ भाग भागकर अन्धकार की शरण ले रहे थे। पक्षीगण भय से आक्रान्त हो पर फड़फड़ाते हुये अन्धकार में उड़ते जा रहे थे। इसी बीच आधे रास्ते में दुष्ट बोकर सेना लेकर सावन की उमड़ती तटिनी में लघु शिलाखण्ड बनकर, झंझावात के प्रबल झकोरे के सम्मुख अड़ना चाहा लेकिन तेरी उमड़ती वीर-वाहिनी के सम्मुख शोणित की धारा में बह गया। यो फनी, आकाश काली चादर फेंक कर मुस्कराने लगा। वीरा, तू रात भर में सौ मील का मार्ग तय करके कालपी पहुँच गई।

कालपी यमुना के किनारे एक ओर दृढ़ किला, तीन ओर परकोटा और चौथी ओर यमुना नदी से घिरा हुआ खासा सुरक्षित नगर था। जब तू वहाँ पहुँची तब राव साहब, नाना साहब का भाई और तात्या टोपे वहीं मौजूद थे। दूसरे दिन तूने इन लोगों से भेंट की। लोगों ने तुम्हारा दिल खोल कर सत्कार किया। तू सत्कार की भूखी न थी। तेरी आँखों के सामने जननी-जन्मभूमि पराधीनता में जकड़ी हुई बिलख रही थी। कानों में अनन्त अन्तरिक्ष में रमती हुई स्वर्गवती हाड़ा रानी देवल देवी ताराबाई प्रभृति क्षत्राणियों की अमर आत्मायें शिक्षा दे रही थीं कि शत्रु से लोहे में कसकर लोहा लेना समराग्नि की सरसराती विभीषिका को चन्द्र पर्व की पीयूषवर्षिणी चन्द्रिका समझ कृपाण की धार का कोमल पथ-भूमि समझकर अनर्थ के पहाड़ को होली जला दे। तू

एक ही दृष्टि में कालपी के गुप्त से गुप्त रहस्य को समझ गई और यह भी जान गई कि राव साहब के सिपाहियों की स्वतन्त्रता पथ में रोड़े बनेंगी, हुआ भी वही। दीवान खास में सबों ने राव साहब को ही कालपी के रण का सेनानायक चुना। उसी समय तू समझ गई कि विजय किसकी होगी और पराजय किसकी? रण का बिगुल बजा दोनों ओर से शस्त्र प्रहार होने लगा। प्रथम शत्रु का पर उखड़ता हुआ दिखाई दिया लेकिन कुशल नायक न होने के कारण विजय का पन्ना उलट गया। फिर भी तेरे अदम्य उत्साह और घोड़े ने पवन में उड़-उड़ कर टापा से शत्रु के मस्तक को विदीर्ण कर बैरी के मानस का चलदल की भाँति चलायमान कर दिया लेकिन राव साहब के नायकत्व में सेना ने इतनी भाँग छान ली थी कि वहां होने वाला जा दव को मंजूर था। फिर भी तू यह नहीं देखना चाहती थी कि पूर्वजों का पावन गेरुआ झंडा शत्रुओं के पर के नीचे रौंदा जाय। दोनों हाथों में काल सर्पिणी-सी लपलपाती तलवार लेकर शत्रु के सिर छाँटने लगी और दाँत से घोड़े का लगाम पकड़ कर संचालन करने लगी। क्षण में ही लाशों का पहाड़ बन गया शोणित की सरिता बह चली, पवन भी आहत हो चीत्कार उठा अनन्त में प्राणों का मेला लग गया लेकिन तेरी यह कुर्बानी विधाता को अभी मंजूर न हुई।

सन्ध्या सुन्दरी ने कौतूहलपूर्ण रक्तिम नेत्रों से देश के सिरदानियों को चिर निद्रा में निमग्न देखा। आँसू की धारा श्यामल अंचल पर बह चली। नेत्र के अंचल के धुलने से वह और भी गाढ़ा हो चला। तू भी सन्ध्या देवी की आराधना के लिये थोड़ी देर ध्यानमग्न हुई। फिर शिविर में प्रवेश किया। इसी बीच गुल मुहम्मद रघुनाथ सिंह और दामुल भी आ पहुँचे। उस समय तेरे पास लाल कुर्ती वाले केवल दो सौ सवार रह गये थे। तुझे निराश होकर इन बचे हुए सिरदानियों को साथ ले और अन्धकार में विप्लवों की छाती पर लगाम मोड़नी पड़ी। आँखों के सम्मुख अब केवल ग्वालियर का ही किला दिखाई दे रहा था और मानस में सुरक्षित रण का बनाने का नक्शा।

ग्वालियर की उषा ने घूँघट खोला। सामने साकार भवानी को देखकर गद्गदा हो उठी। माँग का सुहाग और भी दैदीप्यमान हो गया। प्राची ने

विहँसकर स्वर्णमय फाटक खोला। भगवान अंशुमाली तेरे दर्शन के लिये प्रेम नीर में डबडबाया आँखों से आगे बढ़े। उनका प्रबल शत्रु अन्धकार क्षण में लापता हो गया यह तेरे ही पौरुष का प्रताप था। वीर सेनानियों के साथ तू घोड़े पर से उतर पड़ी। सिर पर आकाश महत्वाकांक्षायें लिये विहँस रहा था।

दूसरे दिन पो फटी। पक्षीगण वृक्षों की शाखाओं से भैरवी सुनकर पृथ्वी पर उतरकर दाना चुँगने लगे। तू भी सखी मुन्दर को साथ ले ग्वालियर के निरीक्षण के लिये आगे बढ़ी। किले से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व मुरार की ओर प्रकृति की गोद में मस्त गाता हुआ सोनरेखा नाला बह रहा था। वृक्षों की सघन लतायें अपनी कोमल बाहें फैलाकर स्वच्छ चंचल जल के ऊपर आलिंगन का जादू पढ़ रही थीं। चंचल बाजि एक ही छलांग में नाले को पार कर उस प्रकृति के हृदय में पहुँच गया जहाँ दूर्वा का मैदान मस्त लहरा रहा था उसी की गोद में प्रशस्त कपाट खोले हुये छोटी-सी कुटिया विहँस रही थी। सम्मुख कारे मृगछाले के ऊपर प्राचीन ऋषियों के प्रतीक बाबा गंगादास ध्यान-मग्न थे। बगल में जल से भरा हुआ कमण्डलु लहरा रहा था। दूसरे पार्श्व में पलाश-दंड रक्खा हुआ था। उस विशाल ललाट से अपूर्व तेज सूर्य की किरणों को भी हतप्रभ कर रहा था। कुटिया की बगल में कदम्ब के वृक्ष से घोड़े बाँध दिये गये जिनकी टापों की ध्वनि और हिनहिनाहट से तपस्वी की समाधि खुली, रक्तिम नेत्र ऊपर उठे। सामने साकार भवानी को देख एक अनिर्वचनीय आनन्द हृदय में लहराने लगा। तू अपनी प्राण प्यारी सखी के साथ शीतल जल से प्यास बुझा कर तपस्वी के द्वारा दिये हुये आसन पर बैठ गई। बाबा जी भी आतिथ्य सत्कार से निवृत्त हो आसन पर विराजमान हो गये। तूने प्रश्न किया—

'स्वराज्य कैसे मिलेगा भगवन् ?'

'जैसे मिलता आया है।'

'नहीं समझ सकी प्रभो!' तूने कौतूहलपूर्ण नेत्र से पुनः आज्ञा माँगी।

'त्याग तपस्या और बलिदान से।'

एक धीमी मुस्कराहट के साथ तूने पुनः प्रश्न किया—

क्या हम लोग अपनी आँखों से देख सकेंगे ?

प्रश्न सुनते ही तपस्वी की मुद्रा घोर गम्भीर हो गई। पुनः सन्नद्ध होकर कहने लगे—"भवानी! यह मोह क्यों ? कभी इमारत की नींव की ईंट उसके साकार रूप को देखती है। इसी भाँति तेरे लिये भी यह असम्भव है कि स्वातन्त्र्य भवन के साकार रूप को देख सको। तुझे तो स्वातन्त्र्य भवन की नींव की पहली ईंट

बननी है जिसके ऊपर सत्य संकल्प त्याग और बलिदान से आनेवाले वीर भव्य भवन का निर्माण करेंगे और उसकी छत्रछाया में देशोत्थान के गीत गायेंगे। इस उपदेश के सुनते ही रणचण्डी! तेरी प्रज्ञा का कपाट खुल गया जिसमें आत्म बलिदान की पावन प्रतिमा विहंस उठी और उधर प्राची के आंचल पर गोधूलि भी मुसकरा उठी। साष्टांग दण्डवत् के बाद मुख से निकला—"मैं पुनः दर्शन करूंगी प्रभो! इतना कहकर सखी मुंदर के साथ घोड़े पर सवार हो किले को लौट आई।

आकाश में विपत्ति के बादल मंडरा रहे थे। विभीषिका अपनी कालसर्पिणी सी जीभ लपलपा रही थी लेकिन ग्वालियर वालों को इसकी परवाह न थी। राव साहब पेशवा के ऐश आराम की नाटकशाला अब भी दिवाली मना रही थी। भांग पर भांग छन रही थी। उधर जनरल रोज की सेना की तैयारी प्रबल वेग से हो रही थी। काल के समान विकराल मुंह बाये शतघ्नी किले की ओर देख रही थी? तेरी आंखों में नींद न थी। हृदय में सन्तोष और आराम न था। तू जीते जी अपने हाथ के पासे को पलटते न देख सकती थी और यह भी न देख सकती थी कि पूर्वजों का पावन गेरुआ झण्डा दुश्मन के परों के नीचे कुचला जाय। तूने अपनी प्यारी सखी मुंदर से कहा यह मेरा अन्तिम संग्राम है। बाबा गंगादास की बात याद है न? मुंदर ने स्वीकार किया। १७ जून को ब्रिगेडियर स्मिथ ने रण का बिगुल बजाया। झांसी के किले की तोपों ने भी जयघोष किया। दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। गोले का जवाब गोले देने लगे। बात की बात में आकाश में धूल और धुएँ छा गये। प्राणों का मेला लग गया। तू भी गोलन्दाजों को शाबाश करती हुई चंचल बाजि पर सवार हो सखी मुंदर को साथ ले प्राणों की बाजी लगा रही थी। लोहों की रगड़ से चिनगारियां छिटक रही थीं। घोड़ों के रेलमेल और तोपों की क्रोधाग्नि से उस दिन अंग्रेजों की पराजय हुई और सैनिक को साथ ले शिविर को लौट आया। सन्ध्या नीरवता के कन्धे का अवलम्बन लेती हुई पृथ्वी पर उतरने लगी।

तुझे रात भर नींद न आई। अपने पांचों सरदारों के साथ रण का नक्शा बनाती रह गई। उधर अम्बर की मन्त्रणा समाप्त हुई और इधर तेरी। सरदारों ने छाती पीठ पर पानी का पैसा बांधा। तू केवल एक गिलास शर्बत ही पी पाई थी कि इसी बीच पुनः रण के बाजे बज उठे। रघुनाथ सिंह ने मुंदर को सचेत किया कि आज रानी का अंतिम युद्ध है इसलिये एक मिनट

के लिये भी साथ न छोड़ना। मुंदर ने स्वीकार किया। तूने रामचन्द्र देशमुख को समझाया कि आज मेरा यह अन्तिम संग्राम है इसलिये बालक दामोदरराव को अपनी पीठ पर बाँधो, अगर मैं मारी जाऊँ तो इसको सुरक्षित दक्षिण भारत में पहुँचा देना। कुँवर रघुनाथ सिंह ! एक बात और कहना है कि विधर्मी मेरे शरीर को छूने न पावें। इसी बीच मुंदर अस्तबल से घोड़ा लेकर आ पहुँची। घोड़े को देखते ही तूने पता लिया कि यह अड़ियल है। मुन्दर हतप्रभ सी खड़ी रह गई। दूसरा घोड़ा लाने का अब समय भी न था इसलिये रानी ने उसे ही अपने अन्तिम संग्राम का साथी बनाया। इसी बीच दुश्मन के गोले गरजने लगे और कुछ न कह सकी। नये घोड़े पर सवार होकर युद्ध की ओर चल दी। रास्ते में घोड़ा अड़ा लेकिन पुचकारने से पुन आगे बढ़ा और शत्रु के सम्मुख आ पहुँचा। रात भर में शत्रु ने काफी तैयारी कर ली थी। तू भूखी सिंहनी की भाँति शत्रु-सेना पर टूट पड़ी। बात की बात में मुण्डों का पहाड़ बन गया। भवानी ! लाल कुर्ती वाले सवार जी-जान से तेरी रक्षा में संलग्न थे और शत्रुओं की संख्या कम कर रहे थे। तुझे एक हाथ की तलवार के युद्ध से सन्तोष न था इसलिये दोनो हाथ से तलवार चलाने लगी और दाँत से घोड़े का लगाम सँभालती थी। उधर रामचन्द्र देशमुख बचा बचाकर लड़ रहा था क्योंकि उसे महारानी की सौंपी हुई थाती की रक्षा भी तो करनी थी। सारा दिन घोड़ा की टापों से सिरदानियों के सिरों को फोड़ते रहे। अंग्रेज बिल्कुल घबड़ा गये थे। उस दिन भी उनकी पराजय हो होने वाली थी कि एक संगीन वाले की संगीन रानी की छाती के नीचे लगा। खून का फौव्वारा फूट चला। इसकी भी तुझे परवाह न था, तुझे तो एक सच्ची लगन थी स्वतंत्रता प्राप्ति की। बात की बात में तूने उस संगीनदार को मौत के घाट उतार दिया। अब दुश्मन केवल आठ दस ही बच रहे थे जो तेरे पीछे-पीछे लग हुये थे। रघुनाथ सिंह समीप थे तूने उन्हें सचेत किया कि अंग्रेज मेरे शरीर को छूने न पावें।

एक अंग्रेज सैनिक की गोली मुन्दर के सीने में लगी। तुम्हारा जयजयकार करती हुई वह वहीं ढेर हो गई। शीघ्र ही रघुनाथ सिंह ने उसको द्रुत दह को काफी स अपनी पीठ पर बाँधा। उर प्रसन्न मुख से निकला भारतीय वीरा के मरने का यही स्थान है।

तूने घोड़े का आगे बढ़ाने का काफी प्रयत्न किया लेकिन सब विफल हुआ। वह दो परों पर खड़ा हो गया। एक पग भी आगे न बढ़ा। इसी बीच दौर अंग्रेज सवार भी आ पहुँचे। एक गोरे ने तेरे ऊपर पिस्तौल का वार किया,

निशाना अचूक था। तेरी बाईं जाँघ गोली के आघात से बेकार हो गई। उस गोली चलाने वाले को तूने बात की बात में सुला दिया। फिर घोड़े को एड लगाई लेकिन फिर भी प्रयास विफल रहा। अब केवल ६ अंग्रेज सैनिक शेष रह गये थे। वे सब और समीप चले आये। इसी बीच तूने एक हाथ की तलवार फेंक घोड़े की अयाल पकड़ी और पुन वीरासन में घोड़े पर बैठ गई। एक हाथ की तलवार से युद्ध करने लगी। एक गोरे सैनिक ने छिपकर पीछे से तेरे सिर पर तलवार का वार किया जिससे सिर का दायाँ हिस्सा और दाईं आँख छटककर गिर पड़ी। तिस पर भी तूने अपनी काल सर्पिणी तलवार से उनको पृथ्वी पर सुला दिया। इसके बाद दानो विधर्मियों की छाती पर लात रखकर खड़ी हुई जैसे शुम्भ निशुम्भ दैत्यों की छाती पर रणचण्डी खड़ी हो। मुख से निकला भारत माता की जय। इतना कहते-कहते बाल सखा तलवार हाथ से गिर पड़ी और तू भी मूर्छित हो गई।

रघुनाथ सिंह और देशमुख ने तेरे मूर्छित शरीर को सँभाला। अपने घोड़े पर बैठाकर उस ओर ले चले जहाँ मन्त्र फूँकने वाले बाबा गंगादास की कुटी थी। कुटी के सम्मुख पहुँचकर रघुनाथ सिंह ने तुझे रेशम के साफे पर सुला दिया और बगल में बाल सखी मुंदर को। तेरी साँस अभी धीरे-धीरे चल रही थी। बाबा जी कुटी से बाहर निकले तो देखा कि स्वातन्त्र्य भवन की नींव की ईंट माता के अंचल पर पड़ी हुई है। पास जाकर देखा अभी तुझमें कुछ जीवन था। कुटी से कमण्डलु लाकर मुँह में गंगाजल छोड़ा। नेत्र खुले प्रेम और संतोष के आँसू छाये हुये थे मुँह खुला केवल इतना ही शब्द साफ-साफ सुनाई पड़ा—

नन दहति पावक। और तू सर्वदा के लिये मौन हो गई। तपस्वी ने अपनी निधि कुटिया को उजाड़कर उसकी लकड़ी से तुम्हारी और तुम्हारी सखी मुंदर की चिता बनायी।

माँ पावक ने प्रसन्नता और संतोष के साथ तुझे और तेरी सखा मुंदर को गोद में बैठा लिया जिसके एक-एक स्फुलिंग में वीरांगनाओं का पावन चरित्र चमचमा रहा था। बालक दामोदरराव को लेकर रामचन्द्र देशमुख दक्षिण भारत चले गये।

—श्यामनारायण प्रसाद

झाँसी
की
रानी

मंगलाचरण

जो है आनन्दन महाशक्ति
जिससे है रक्षित दिग्दिगन्त,
उद्भव – विकास – आनन्द–धाम
जिससे धरणी का आदि–अन्त,

जग के आदान प्रदानों में
जिसकी गरिमा है लाल-लाल,
जो अम्बर से भूतल तक है
सुखदायक गौरवमय विशाल,

मधु - कैटभ का जीवन पीकर
जिसकी आँखें हैं रक्तवर्ण,
जिसके भय से डगमग हिमनग
वसुधा का कम्पित पर्ण-पर्ण,

जिसके पवि सम पद के नीचे
दब स्वर्ग सिधारा था निशुम्भ,
होते ही जिसकी भृकुटि वक्र
शोणित से भरता शुम्भ-शुम्भ,

है महाजलधि का शान्त उर
मुँह तक आ जाता काँप-काँप,
शिव शिव भजते मद, रवि, उडुपति
नभ में पद रखते नाप-नाप,

सुर-असुर सभी कम्पित कर से
देने लगते हैं अर्घ्य-दान,
अवनी अचल पर क्षण में ही
होने लगता है प्रलय-गान,

अम्बर में लसकर बिजली सी
जिसकी चमचम चपल कटार,
हो उठता महा महीधर का
उर भी अति कम्पित एक बार,

घनमय अम्बर भी सिहर-सिहर
भजने लगता है राम-राम,
वसुधा दिग्दिक् से है कहती
हे अवध-धाम-अभिराम राम!

डगमग-डगमग धरणी करती
होते रवि के घोड़े सशंक,
अपने पथ से विचलित होकर
शंकित चलते थे चाल वक्र,

दृढ़ ग्रस्त कमठ दुःसह दुख से
व्याकुल होकर करता थर-थर,
रसहीन मरुस्थल के उर से
बह चलता वारि विहँस झर-झर,

लिख रहा पवन रञ्जित पट पर
है घूम घूम जिसका सुनाम,
उस महाशक्ति के चरणों में
शत शत प्रणाम, शत शत प्रणाम॥

ज्योति

अहोरात्र में प्रकृति वधू से
मिलकर हँसनेवाली कौन ?
शिशिर कणों की विमल उषा में
जगमग करनेवाली कौन ?

निर्जन में वन की रानी को
नित्य जगानेवाला कौन ?
महाजलधि के शीतल उर में
आग लगानेवाली कौन ?

चन्द्र-सूर्य जिसके प्रहरी हैं
मन को हरनेवाली कौन ?
उच्च हिमालय के मस्तक पर
नित्य विचरनेवाली कौन ?

चन्द्र पथ में विमल चाँदनी
बनकर आनेवाली कौन ?
वन - उपवन में, सुमन-सुमन में
मधु बरसानेवाली कौन ?

निशा की अलसाई पलकों को
हँसकर धोनेवाली कौन ?
सपनों में सोई वसुधा की
निद्रा खोनेवाली कौन ?

जग में निर्गुण-सगुण-रूप में
छिपकर आनेवाली कौन ?
सुगम-अगम के गूढ तत्त्व को
विहँस बतानेवाली कौन ?

तृषित तितलियों की पाँखों को
कर से रँगनेवाली कौन ?
महाप्रलय में भी हँस-हँसकर
सुख से जगनेवाली कौन ?

मसि-कागज के अमल भवन म
दीप जलानेवाली कौन ?
मायामय रजनी म कवि का
पथ दिखलानेवाला कौन ?

जिसे खोजकर हार गया जग
कहता यह मतवाली कौन ?
विश्व मोहिनी रूपा बाला
मायामय छविवाली कौन ?

सृष्टि प्रलय-पश्चात् अवनि पर
एक वही है जो है मौन।
निराकार साकार रूप में
रात रही है होकर मौन॥

वही जगत् का आदि अन्त बन
जग-रचना करती है मौन।
प्रथम गगन को फिर भूतल को
तेजोमय करता है मौन॥

बुद्धि-पद्म से यही निकलकर
हृदय-पद्म में होती मौन।
जग में फिर आनन्द-राग का
फैलाती है होकर मौन॥

वही सघन घन में चपला है
उर में आत्म रूप है मौन।
सकल निरत को नित्य जगाती
स्वयं बनी रहती है मौन॥

वही राम है, वही कृष्ण है,
वही ब्रह्म है जो है मौन।
वही शब्द है, वही अर्थ है,
वही काव्य है जो है मौन॥

प्रेम वही है, राग वही है,
त्याग वही है जो है मौन।
ज्ञान वही है, सत्य वही है,
शिव वही है जो है मौन॥

नाम ज्योति सुन्दरतामय है,
प्राणाधार है होकर मौन।
धरणी, गगन, अनन्त दिशा को
भासमान करती है मौन॥

परिचय

झाँसी की रानी

लेकर स्वतन्त्रता के ध्वज को
निर्भय फहरानेवाली थी।
रणचण्डी के क्रोधानल सम
बनकर लहरानेवाली थी॥

वह राज-योग का भस्म लगा
नित अलख जगानेवाली थी।
रणभेरी के रव में स्वर भर
वह वीर बनानेवाली थी॥

'तुम जगो वीर बुन्देलखण्ड'
यह मन्त्र फूँकनेवाली थी।
निज मातृ-भूमि के अर्चन में
वह नहीं चूकनेवाली थी॥

निद्रित झाँसी के कण-कण में
नव शक्ति जगानेवाली थी।
इस वीर-भूमि की पूजा में
सर्वस्व चढ़ानेवाली थी॥

वह महामृत्यु बनकर अरि के
सिर पर मँडरानेवाली थी।
जीवन पी-पीकर अरि-कुल को
हर-लोक पठानेवाली थी॥

जिसने जीवन के संकट की
लपटों में भी हँसना सीखा।
असि जिह्वा लेकर नागिन की
विपदाओं को डसना सीखा॥

निज प्राण हथेली पर लेकर
वन, सरिता, अगम पहाड़ों में।
वह जगा रही थी नई शक्ति
सब सोनेवाले हाड़ों में॥

ले समर सिन्धु कर-गण्डुलि पर
वह रसकर पीनेवाली थी।
ले प्रेम-तन्तु स्वातन्त्र्य वस्त्र
निज कर से सीनेवाली थी॥

रानी का रण हुङ्कार प्रबल
नभ में है अब भी गूँज रहा।
रानी का जय जयकार सतत
भारत मानस में गूँज रहा॥

रानी अब भी है डोल रही
कण-कण में नूतन शक्ति बनी।
अब भी वह देवी बोल रही
इस विश्व-हृदय में भक्ति बनी॥

(नश्वर तन से है दूर, किन्तु
जिह्वा पर अमर कहानी है।
स्वातन्त्र्य सत्य कहता रहता
माँ झाँसीवाली रानी है॥

जिसने सत्तावन में बलि दी
उसकी ही कथा सुनानी है।
जिसके जीवन के तत्वों की
हम सबका स्मरण कहानी है ।।

नारी-सेना

जिसको था अब तक समझ रहा
जग वैभव में पलनेवाली।
नर रूप कुसुम की माला बन
मन मन्दिर में चढ़नेवाली॥

वह आज धरा पर विहँस रही
है फूल बनी अंगारों में।
चढ़ रही शत्रु की छाती पर
बरछी, भालों, करवालों में॥

वह एक बनी है गरुड़ सदृश
तक्षक दल की फुफकारों में।
वह अचल बनी है अचल खड़ी
अरि सेना की ललकारों में॥

पग पायल की ध्वनि गूँज रही
हथियारों की झनकारों में।
मुख सी सी रवि सम दमक रहा
रिपु दल के तीखे वारों में॥

वह बार बार कहती बढ़ती
'तलवारों की परवाह नहीं॥
है स्वतन्त्रता की एक चाह
अब और दूसरी चाह नहीं॥

बस एक पन्थ है बढने का
अरि-दल की विकट कटारों में।
बस एक दाह है उठी हुई
तलवारों में तलवारों में॥

हरिद्र भूमि वह दूर नहीं
जिस पर हँस रक्त चढाना है।
अब वह दैवत है दूर नहीं -
जिस पर हँस प्राण चढाना है॥

जिस पर चढकर रणधीरों ने
नश्वर जग में मरना सीखा।
भारत के वीर सपूतों ने
रण-सिन्धु त्वरित तरना सीखा॥

है जन्म-भूमि स्वातन्त्र्य जहाँ
बस चलकर वहीं समाना है।
निज रूप कुसुम की माला से
माँ का शृङ्गार सजाना है॥

यदि वन, नद, नदी पहाड़ों में
स्वातन्त्र्य-सौख्य को पाना है।
तो मेरे लिये वही प्रतिपल
प्रासादों-सा सुख थाना है॥

बस एक प्रतिज्ञा है मेरी,
माता को मुक्त बनाऊँगी।
अम्बर के मस्तक पर सहर्ष
नव कीर्ति-ध्वजा फहराऊँगी॥

विप्लव के गायन गा-गाकर
जग को यह पाठ पढ़ा दूँगी।
यदि समय कहेगा तो हँसकर
मैं प्राण प्रसून चढ़ा दूँगी ॥

तलवार

बचा लो हृदय ! बचा लो शीश !
धरा पर होता उल्कापात ।
अरे ! यह तो विष-निधि की स्वच्छ
प्रभा - सम चमक रहा अहिजात ॥

अभी यह शुद्ध चाँदनी तुल्य,
पलक गिरते होती है काल ।
एक क्षण ग्रीवा को यह चूम
त्वरित होती किसलय सम लाल ॥

अलौकिक इसका सुन्दर वेष
प्रबल घोड़े पर है आरूढ़ ।
स्वयं झाँसी की रानी बैठ
सँभाले है यह बल्गा गूढ़ ॥

पवन को चीर, चमकती हुई
गगन का लेती है यह घाट ।
रुधिर में करती हँस-हँस स्नान
मुण्ड से देती है भू पाट ॥

कबन्धों का रचकर सोपान
चढ़ी जाती है नभ की ओर ।
प्रभा ! इस प्रलय - रूप का यहाँ
नहीं है कहीं ठिकाना छोर ॥

अभी थी इधर, इधर अब नहीं
किधर वह गई पवन को चीर ?
अरे ! वह देख, उधर सिर काट
दूर कर रही विघ्न की भीड़ ॥

न जाने इसकी कितनी प्यास
जीभ में कितना भारी ताप ।
कि जीवन जिसका करके स्पर्श
त्वरित बन जाता केवल भाप ॥

दिवस, निशा, प्रहर, घटी, विनिमेष
सदा जगती रहती यह प्यास ।
जिसे शीतल करने के हेतु
हो रहा अरि उर सिन्धु हताश ॥

धरा पर स्वयं हुआ अवतीर्ण
आज त्रेता का लंका दाह ।
प्रबल जिसके पानिप के बीच
नहीं मिलती प्राणों को राह ॥

इसी से अरि-मुण्डों के बीच
ढूँढ़ते प्राण शान्तिमय स्वर्ग ।
कभी लुंठित सिर हैं मुँह लाल
पूछते ईश ! कहाँ अपवर्ग ?

देख यह इन्द्रजाल का खेल
विकल होते हैं दैवी दूत ।
सोचते किस पथ से ले जायँ
स्वर्ग को माँ के वीर सपूत ॥

असशय यह है माया-रूप
यहाँ आया छलने ससार।
अरे! क्या भूल रहा रे विश्व!
स्पष्ट यह रानी की तलवार॥

सुन्दर और सुन्दर

स्वातन्त्र्य भवन का दीपक
अविरल अविराम जलेगा।
माँ के आँचल पर निर्मल
आलोक नवल लहरेगा॥

विघ्नों की तिमिर घटा यदि
चाहेगी उसे छिपाना,
अरि-दल पतग बनकर यदि
चाहेगा उसे बुझाना,

आँधी बनकर रण में तो
मैं तम घन-नाश करूँगी।
ज्योतिर्मय अवनी का मैं
रच-रच शृङ्गार करूँगी॥

रानी से भी पहले मैं
यह हृदय दीप भर दूँगी।
जीवन की ज्योति चढ़ाकर
नव विमल प्रकाश करूँगी॥

पूजा की है यह बेला
अरि प्राण प्रसून चढ़ेगा।
नश्वर तन की आहुति से
माँ का सम्मान बढ़ेगा॥

आओ असि! बाल सती है
नहला दो अब शोणित से।
इस युद्ध पर्व पर नूतन
शृङ्गार करो लोहित से॥

यह कर्णवती का स्थल है
पन्ना का है रखवाला।
हाड़ारानी का हँसता
है यहाँ सतीत्व निराला॥

उन सतियों की है यह भू
जो पति का साज सजाती।
निर्भय कर में असि देकर
समर में विहँस पठाती॥

माताओं ने इस भू का
हँस हँस सम्मान किया है।
प्राणों से प्यारे सुत को
इस पर बलिदान किया है॥

उनकी ही शप कहानी
यह झाँसी की रानी है।
उनकी गति इस जगती में
अरि-हरणी पहचानी है॥

इस पर ही सदा जगी है
सतियों की जौहर ज्वाला।
इस पर ही विहँस चढ़ा थी
नारीत्व कुसुम की माला॥

देखूँगी रानी पर अब
किस अरि की आँख उठेगी।
सुन्दर सुन्दर की असि से
उसकी सब साख मिटेगी॥

घोड़ा

जिसने रानी की पूजा की
यह वही वाजि मतवाला है।
स्वामी से पहले वेदी पर
निज प्राण चढ़ानेवाला है॥

डटकर जो अरि की सेना पर
अन्तक बन-बनकर लहराया।
जिसने सत्तावन का झण्डा
नभ के मस्तक पर फहराया॥

जिसने रिपु दल में भय भरकर
हँस-हँस रण सागर पार किया।
सत्वर माँ की परवशता का
बन्धन था जिसने वार किया॥

जो सिंह सदृश बन जाता था
मद-मस्त गजों की चालों में।
वह पवन सदृश लहराता था
बरछी, भालों, करवालों में॥

वह शत्रु नगों के शिखरों को
क्षण में कण कण कर देता था।
रानी के पथ की बाधाएँ
हँसता हँसता हर लेता था॥

यह अरि दल से कहता बढ़कर
मेरी है विजय लिखो झुककर।
यदि लड़ना हो तो लड़ ही लो
मेरी टापों से तुम आकर॥

यह कह-कहकर हर हर गति से
रानी को ले लहराता था।
मिलता न समीरण को पथ था
हय चालों में रुँध जाता था॥

फिर कौशल से मोहित होकर
हय के पीछे चल देता था।
मानो रानी के घोड़े से
गति की शिक्षा वह लेता था॥

तन से शोणित के निर्झर भी
झर-झर झर झर-झर झरते थे।
मारुत में चल कौशेय बाल
फर फर फर फर-फर करते थे॥

घावों की चिन्ता उसे नहीं
वह बन्धन मुक्त निराला था।
रानी का था वह प्राण, किन्तु
स्वातन्त्र्य भाव मतवाला था॥

रानी की विमल कहानी में
उसकी भी अमर कहानी है।
रानी की अनमिट गाथा में
उनकी सक्रियता मानी है॥

झाँसी का दुर्ग

है यही दुर्ग उस रानी का
जो कण-कण में है रमी हुई।
हो चकित गगन से पूछ रही
सगर में क्या थी कमी हुई?

दुर्जय दुर्ग है आज शान्त
धीरे धीरे है बोल रहा।
जिसकी ऐसी गति देख-देख
शंकर का आसन डाल रहा॥

रथ यही निकलता है गढ़ से
पूजन कर लो उस रानी का।
मेरी छाती पर धधक रहा
है चरण चिह्न सिर दानी का॥

मेरे कण कण में रानी के
हँसते स्वदेश के प्यार छिपे।
माँ महना के उद्गार छिपे
असि नागिन के फूत्कार छिपे॥

मेरी क्रोधानल ज्वाला से
दिनभर रवि तपता आता है।
सुभग रानी का अमल नाम
'जय काली' भजता आता है॥

है चाह न अक्षत-फूलों की
है चाह नहीं जलपानों की।
मुझको तो स्मृति फिर-फिर आती
माँ-बहनों के सम्मानों की ॥

मेरे उर में है धधक रही
वह ज्वाला सती भवानी की।
मुझको है स्मृति माताओं की
उनकी आँखों के पानी की ॥

मेरे कण-कण में गूँज रहा
है रजपूती अभिमान अभी।
झाला का जीवन-त्याग अमल
गोरा का अविरल गान अभी ॥

झाँसी ! तुमको जगना होगा
कुछ वीर-कथा कहनी होगी।
हँस बोलो तुम मेवाड़-वीर !
कुछ सती-व्यथा कहनी होगी ॥

जागो हे चारो धाम ! पुन
जागो हे त्याग तपस्वी के !
जागो हे क्षत्रिय के औहर
जागो आदर्श मनस्वी के !

मैं चला आ रहा हूँ युग से
माँ-बहनों का सिंदूर लिए।
हँस-हँस पति सँग दावानल में
सोई सतियों की राख लिए ॥

हे समय ! बता कब आवेगी
भूतल की नई जवानी अब ?
हे अम्बर ! बता सुजगिनि ले
अब आवेगी महरानी कब ?

रानी का उद्बोधन

खोलो द्वार सजग प्रहरी तुम !
सोते हो सो जाग उठो।
हे स्वतन्त्रता के विलास ! तुम
जाग उठो, हँस जाग उठो॥

हे युग की असि ! जाग उठो अय
मौन सुहागिन ! जाग उठो।
जिसके डसने में विष लहरें
प्यासी नागिन वह जाग उठो॥

जाग उठो हे शक्तिदायिनी !
माँ रुद्राणी ! जाग उठो।
जाग उठो हे पूज्य तपस्विनी !
माँ कल्याणी ! जाग उठो॥

जाग उठो माँ सिद्धिदायिनी !
दुर्ग विनाशिनि जाग उठो।
जाग उठो माँ शैल नन्दिनी !
शिवा भवानी ! जाग उठो॥

जागो जौहर की ज्वाला में
रमी देवियो ! जाग उठो।
माला लेकर फिर सतीत्व की
सोई सखियों ! जाग उठो॥

जाग उठो माँ सिंहवाहिनी !
विश्वकारिणी ! जाग उठो।
दक्ष-सुता ! ईश्वरी ! अपर्णा !
विघ्नहारिणी ! जाग उठो॥

जाग उठो हे विन्ध्यवासिनी !
उमा ! भवानी ! जाग उठो।
जाग उठो पतिभक्ता ! देवी !
अम्बा ! माया ! जाग उठो॥

कोमल बाहों में बल भरकर
उर में भारत-प्यार भरो।
सत्य मार्ग तुम मुझे बताकर
यह सेवा स्वीकार करो॥

पहली हुंकार

बीते युग की है बात, किन्तु
इसको ही आज सुनाना है।
इस वीर मंत्र से भारत के
कण कण को आज जगाना है॥

सो रही राख में सब गति-मति
जर्जर हो रही जवानी है।
इसकी औषधि केवल जग में
रानी की अमर कहानी है॥

रो रही आज है आर्य भूमि
सो रहा आज गुरुद्वारा है।
इस पुण्य भूमि के गौरव की
गाथा ही एक सहारा है॥

रो रो कहते अपनी विपदा
सागर से चारों धाम विकल।
गिरिराज दृगों से गरम अश्रु,
सरिताओं में बहते अविरल॥

इसलिए वीर शोणित रंजित
विजय ध्वज फिर फहराना है।
मुण्डों की सीढ़ी बना बना
अम्बर तक इसे उठाना है॥

उर के शोणित से लिखा हुआ
माँ का आख्यान सुनाना है।
कोने कोने में अवनी के
पूर्वज का मन्त्र पढ़ाना है॥

पाठक! हा जाओ सावधान
रानी का मन्त्र सुनाना है।
मानस की पावन मधु माला
चरणों पर आज चढ़ाना है॥

हो गइ यामिनी थी पीली
धरणी शृङ्गार सजाए थी।
झिलमिल मोती के हारों में
नूतन अनुभाव छिपाए थी।

हँसकर मर सरिता के मानस
उर में उद्गार जगाते थे।
पंछी नीड़ों में बैठ-बैठ
प्रभु का सुख से यश गाते थे॥

सपनों का राज्य सलोना था
मन का उन्माद निखरता था।
वसुधा के आँचल पर निशि भर
मानव का भाग्य बिखरता था

निशि भर पकज के मानस में
बन्दी मधुकर अकुलाते थे।
डाली पर बैठ भुजंगे भी
ठाकुर ठाकुर जा गाते थे॥

सपनों के रंजित उपवन में
दो प्रणयी सुख से सोते थे।
कामना बाज वे विहँस विहँस
नव भाव क्षेत्र में बोते थे॥

मनमाना मन था निखर रहा
चेतना शान्त हो सोई थी।
उस माया की छाया में भी
आशा सी तरुणी कोई था॥

मंगलमय चाहों सी लम्बी
उसकी वेणी थी झूम रही।
माता के स्नेह सदृश झुककर
दोनों को वह थी चूम रहा॥

उसके रक्तिम कर पल्लव में
कल्पना सदृश कमलता थी।
मधुमयी मृगी सी आँखों में
योगी के मन सी स्थिरता थी॥

चमचम हिम नग पर सोई थी
स्वच्छन्द भाव से गाती थी।
वह कभी विलासों पर साकर
मदमाती सी बल खाती थी॥

दिन में रवि के कर पर चढ़कर
पृथ्वी पर आती जाती थी।
निशि में वृन्दारक के सँग-सँग
वह स्वर्गलोक हो आती थी॥

वह कभी तारिका से मिलकर
कुछ मन्द-मन्द मुसकाती थी।
योगी बन नभ की गंगा में
वह विधु के साथ नहाती थी॥

वह सरल बालिका थी उस पर
कोई अधिकार न पाता था।
उसका वह निश्चल तेज पुञ्ज
यम के उर पर घहराता था॥

कहते स्वतन्त्रता भी उसको
जग में वह एक निराली है।
सरिता, निर्झर रत्नाकर के
कलरव में रमनेवाली है॥

सच्चे मानस की छाया में
माया से परे विहँसती जो।
सौन्दर्य रूप में रमी हुई
लज्जा के साथ गरजती जो॥

भावना सदृश कोमलता में
धीरे धीरे सिमटी आती।
माधव के सुखमय शासन में
लाली बनकर लिपटी जाती॥

आँखें था दोनों लाल-लाल
वह मन्द मन्द मुसकाती थी।
चमचम तलवार दिखाकर वह
अन्तक को भी थराती थी॥

वह मस्त सिंह पर बैठी थी
मतवाली खप्परवाली थी।
शोणित भर भरकर तनती थी
दुर्गा थी, रण मतवाली थी।

ज्यों धर्म कर्म के सम्पुट में
जीवन पलकर मोती होता।
लावण्यमयी सित आभा में
नित सत्य रूप भासित होता॥

उस सत्य रूप को चूम चूम
पीयूष धार बहती रहती॥
होती उसमें अनहद ध्वनि नित
रागिनी मधुर बजती रहती।

वैसे नभ धरणी सम्पुट में
नव स्फटिक शिला मुसकाती थी।
उससे झरकर जल की धारा
कल कल ध्वनि में लहराती थी॥

उस स्वच्छ शिला पर स्वतन्त्रता
बैठी हा दुर्गा से बोली।
धीरे धीरे भारत माँ की
दुख द्वन्द्व भरी भोली खोली॥

हे आली। चलो चलें भू पर
रजपूती शान बचाना है।
तापस बाला की सुखद कथा
जन जन का अभय सुनाना है॥

वह कभी तारिका से मिलकर
कुछ मन्द-मन्द मुसकाती थी।
योगी बन नभ की गंगा में
वह विधु के साथ नहाती थी॥

वह सरल बालिका थी उस पर
कोई अधिकार न पाता था।
उसका वह निश्चल तेज पुञ्ज
यम के उर पर घहराता था॥

कहते स्वतन्त्रता भी उसको
जग में वह एक निराली है।
सरिता, निर्झर रत्नाकर के
कलरव में रमनेवाली है॥

सच्चे मानस की छाया में
माया से परे विहँसती जो।
सौन्दर्य रूप में रमी हुई
लज्जा के साथ गरजती जो॥

भावना सदृश कोमलता में
धीरे धीरे सिमटी आती।
माधव के सुखमय शासन में
लाली बनकर लिपटी जाती॥

आँखें थी दोनों लाल-लाल
वह मन्द-मन्द मुसकाती थी।
चमचम तलवार दिखाकर वह
आतङ्क को भी डराती थी॥

वह मस्त सिंह पर बैठी थी
मतवाली खप्परवाली थी।
शोणित भर भरकर तनती थी
दुर्गा थी, रण मतवाली थी।

ज्यों धर्म कर्म के सम्पुट में
जीवन पलकर मोती होता।
लावण्यमयी सित आभा में
नित सत्य रूप भासित होता॥

उस सत्य रूप को चूम चूम
पीयूष धार बहती रहती॥
होती उसमें अनहद ध्वनि नित
रागिनी मधुर बजती रहती।

वैसे नभ धरणी सम्पुट में
नव स्फटिक शिला मुसकाती थी।
उसको छूकर जल की धारा
कल कल ध्वनि में लहराती थी॥

उस स्वच्छ शिला पर स्वतन्त्रता
बैठी ही दुर्गा से बोली।
धीरे धीरे भारत माँ की
दुख द्वन्द्व भरा भोली खोली॥

हे आला! चलो चलें भू पर
रनपूता शान बचाना है।
तापस बाला की सुखद कथा
जन जन को अभी सुनानी है॥

वह स्फटिक शिला आलोकित हो
हँस पड़ी ब्रह्म की माया सी।
फट गई तमिस्रा अनायास
उस चन्द्र प्रभा की काया सी॥

दो शक्ति चमक कर एक हुई
नभ की आँखें चमचमा उठीं।
वे दुग्ध धवल सुर सरिताएँ
करवट बदले मुसक्रा उठीं॥

चमचम अम्बर भी चमक उठा
वह एक शक्ति सत्वर बोली।
सुप्तावस्था में दम्पति की
आशा की झोली थी खोली॥

हे अबले! हो न हताश अभी
दुर्दिन में हँसती आशा है।
चंचल जलनिधि की लहरों को
व्याकुल कर रही पिपासा है॥

मैं भी पृथ्वी पर आऊँगी
जन जन में ज्योति जगाऊँगी।
अबला को सबला बना बना
पावन आदर्श दिखाऊँगी॥

घन प्रलय सदृश घहराऊँगी
दावाग्नि समान जला दूँगी।
माता की लाज बचाने में
अपना सर्वस्व लुटा दूँगी॥

कैलासाचल के कण-कण को
अंगार सदृश धधकाऊँगी।
उस पर निर्ममता को क्षण में
मैं भस्मीभूत बनाऊँगी॥

भारत धरणी की इति भीति
दावाग्नि समान जला दूँगी।
फिर लज्जा की शुचिता धारा
भूतल पर मैं लहरा दूँगी॥

माता! उर म मत करो शोक
तुमको मैं शीश नवाती हूँ।
अपनी हँसती इच्छाओं की
मैं माला तुम्हें चढ़ाती हूँ॥

हो गइ हमारा जननी तुम
जगती तल भी पावन होगा।
नारी-जीवन के आतप म
हँसता निनयी सावन होगा॥

लकर सित घोड़े पर निज असि
चमकी यह दैवी बाला सी।
नन दिव्य प्रभा घन कौंध गइ
घन म बिजली की माला-सी॥

जग गण युगल प्रणयी सुख से
मानवता बाहु पसार मिली।
हुआ स्वतन्त्रता भूतल पर
आता है, यह नव धार मिली॥

वह विप्र - सुता निज प्रिय पति से
मीठी वाणी में बोल उठी।
मानस सरसी की लहरों में
थी भाव सुधा सी घोल उठी॥

"कौतूहल का नव सिन्धु नाथ!
मानस में आज उमड़ता है।
प्रात का मंजुल स्वप्न अभी
रह रहकर विहँस घुमड़ता है॥

उसकी नव छाया अभी सतत
आँखों में चित्र बनाती है।
मँझधार पड़ी तरणी की वह
पतवार बनी लहराती है॥

वह नव स्वर्णिम वरदान अभी
सावन बनकर लहराता है।
मेरे भावी की माया पर
वह विजय केतु फहराता है॥

वह मूर्ति मुझे ऐसी लगती
मानो भीतर मुसकाती हो।
अपने उर के ताने-बाने
मेरे उर में बुन जाती हो॥"

कह रही कथा मधुमय-स्वर में
सुनते थे मोरोपन्त विहँस।
जैसे नीरव में सरिता से
सुनता उडुपति सुरगान सुयश॥

पावन वसन्त में सौरभ से
मिलकर कलियाँ मुसकाती ज्यों,
चंचल मद-मस्त हवाओं से
मिल हरियाली लहराती ज्यों,

उत्ताल तरंगें विहँस विहँस
मंगलमय - पाठ पढ़ाती ज्यों,
सतरंगी - दुनिया बना मिटा
उत्थान पतन बतलाती ज्यों,

जैसे मुसकाती गोधूली
नीरद पर चित्र बनाती है,
आलोकमयी चंचल - किरणें
दुख - सुख सम भाव बताती हैं,

वैसे हा! पति की सन्निधि में
वह अबला भी हँस झूम उठा।
उस पराहीन दुख-रजनी का
आलोक-धार थी चूम उठी॥

उनको निश्चित निश्वास हुआ
वह विमल - चन्द्रिका आयेगी।
युग प्रणयी की सूनी गोदी
सुख राशि भरी लहरायेगी॥

आशामय लहरों से मिलकर
सरिता तट है मुसकाता ज्यों,
प्रातः सन्ध्या की आभा में
गिरिराज छत्र लहराता ज्यों,

चचल चपला की कौंध लिए
घनमय अम्बर घहराता ज्यों,
लेकर माधव से पुष्प दान
वन वन तरु-तरु मुसकाता ज्यों,

वैसे ही तारापन्त साधु
जाया को लेकर मधुर भाव।
काली स्वतन्त्रता देवी की
कर रहे अर्चना भरे चाव॥

हँस पड़े नियति भी विहँस उठी,
नव इन्द्रजाल का मुकुल खिला।
प्रतिपल कण-कण हँस-हँस कहता
है विप्र! किशोरी रत्न मिला॥

युग युग की मौन निराशा से
आशा मुसकाती गले मिली।
उस प्रणय सरोवर बीच नवल
लहराती कोमल कली खिली॥

बोला वह विप्र 'उठो सरले!
चलकर गंगा में स्नान करें।
इस दिव्य शम्भु की नगरी में
हम यथाशक्ति कुछ दान करें॥'

चल पड़े युगल-प्रणयी कहते
जय काशी के अभिराम प्रभो!
जय अवध धाम के विमल हृदय,
जय कौशल्या के राम प्रभो!

पावन वसन्त में सौरभ से
मिलकर कलियाँ मुसकाती ज्यों,
चंचल मद-मस्त हवाओं से
मिल हरियाली लहराती ज्यों,

उत्ताल तरंगें विहँस विहँस
मंगलमय पाठ पढ़ाती ज्यों,
सतरंगी दुनिया बना मिटा
उत्थान - पतन बतलाती ज्यों,

जैसे मुसकाती गोधूली
नीरद पर चित्र बनाती है,
आलोकमयी चंचल किरणें
दुख सुख सम भाव बताती हैं,

वैसे ही पति की सन्निधि में
वह अबला भी हँस झूम उठी।
उस पराहीन दुख-रजनी का
आलोक धार थी चूम उठी॥

उनको निश्चित विश्वास हुआ
वह विमल चन्द्रिका आवेगी।
युग प्रणयी की सूनी गोदी
सुख राशि भरी लहरावेगी॥

आशामय लहरों से मिलकर
सरिता तट है मुसकाता ज्यों,
प्रातः सन्ध्या की आभा में
गिरिराज छत्र लहराता ज्यों,

जिस समय उठाई अंचला ने
माला उपहार चढ़ाने को।
कंचन के चचल कलित ललित
भास्कर को विहँस मनाने को॥

उस समय कुचि के बीच उसे
सुन्दर प्रतिमा सी ज्ञात हुई।
अवलोक जिसे थी स्वयं शची
सौन्दर्य राशि से मात हुई॥

सहसा दोनों दृग बन्द हुए
वह रूप-राशि दमदमा उठी।
शोणित की प्यासी असि लेकर
वह चम चम, चम चमचमा उठी॥

करके सब स्नान द्विजोत्तम ने
शिव, शिव भनते प्रस्थान किया।
प्राची-गढ़ से रवि ने हँसकर
रथ पर चढ़ तुरत प्रयाण किया।

तट पर बैठे थे दीन-दुखी
देता द्विज उनको दान चला।
देते थे आशीर्वाद सभी
जय गंगा मैया करें भला॥

हो गया नित्य का धर्म यही
मँह मँह करता था रम्य भवन।
उस पुण्य व्रती से हवि पाकर
था गंध बाँटता पुण्य पवन॥

मुख पीला होता जाता था
भीतर अरुणाई छाती थी।
मानस-सागर की ऊर्मि निहँस
उठती बढ़ती लहराती थी॥

लेकर पावन सन्देश नया
नव मास बीतता जाता था।
आनन्द बधाई बनती थी,
मधुमास विहँसता आता था॥

करते करते सत्कर्म धर्म
बीते पूरे नौ मास अभय।
वे नहीं समाते थे फूले
मन विचर रहा था नित निर्भय॥

तब शरद जुन्हाई फैल गई
हो गये सरोवर जल निर्मल।
व्रतमय विशुद्ध उस दम्पति के
मानस में विकसे अमल-कमल॥

कार्तिक की दुग्ध-धवल रजनी
तारक-माला पहनाती थी।
अगणित लाखों को अंक भर
अम्बर-सुरसरि लहराती थी॥

धरणी मोता से सज धजकर
कोमल शैय्या फैलाती थी।
मिली बैठी प्रमुदित मन से
बाणा का तार बनाती थी॥

कोमल रश्मि-नव किसलय में
कलियाँ भूषण बन सजती थीं।
सुकुमार भार से दबी हुई
शशि किरणें उन्हें बरजती थीं॥

दिनभर का श्रान्त समीरण भी
गतिहीन शिथिल अलसाता था।
वन, सरिता, सागर के ऊपर
निज कोमल पर फैलाता था॥

प्रमुदित मन से जग महाराष्ट्र
बीते दिन का गुण गाता था।
अम्बर अगणित कल्पना लिए
मधुमय भविष्य दरसाता था॥

नव मधुर गुलाबी शीतलता
चन्द्रिका प्रसन्न लुटाती थी।
राका यौवन की सीमा पर
लज्जा से मिल मुसकाती थी॥

वह मधुर हंसी भर लेने को
कुमुदिनी पटल फैलाती थी।
रजनी शुभ बेला देख नवल
मुक्ता की राशि लुटाती थी॥

सहसा विपदा-घन-पटल चीर
यह एक शक्ति भू पर आई।
उस व्रती विप्र की दुहिता बन
लक्ष्मी लक्ष्मी बनकर आई॥

माता के स्नेह सरोवर में
वह सरस लहर बनकर आई।
नित चन्द्रकला सी बढ़ती वह
नव - चपल भाव लेकर आई॥

थे जननी जनक प्रसन्न और
उर में सुख-माया थी छाई।
उनकी अभिलाषा रूप बदल
आइ बन स्वयं मनूबाइ॥

पावन प्रकाश के मिटने पर
घन अन्धकार लहराता है।
सावन के पीछे धरणी पर
घन तुहिन - भार घहराता है॥

उस भाँति युगल प्रणयी पर भी
विपदा का बादल मँडराया।
सुख से मुसकाते फूलों पर
हिम बनकर तत्क्षण आ छाया॥

शशव के चौथे वत्सर म
ममता माया से छली गइ।
लाड़िली मनू को छोड़ अम्ब
हर-लोक मौन हो चली गइ॥

चल बसे चिमाना भी उनके
जीवन-दाता आश्रय दाता।
जिनके गभय पर ही द्विज का
था घरा सदा पोषण पाता॥

उनको विठूर से उसी समय
था मिला एक सन्देश नया।
थी बाजीराव पेशवा की
जिसमें मुसकाती विमल दया॥

आह्वान किया जिसने द्विज को
पावन विठूर में आने का।
अपनी सुकुमारी कन्या की
जीवन कलिका विकसाने का॥

पाकर सन्देश द्विजोत्तम ने
शंकर को मुदित प्रणाम किया।
पावन विठूर के लिये मगन
काशी से शुभ प्रस्थान किया॥

दूसरी हुंकार

हो रहा समर था निशदिन "।
वसुधा के धूमिल-अचल पर।
जिसका आतंक गरजता था
भू के कम्पित दल दल पर॥

यह समर देखने को रवि भी
चढ़ गए उदयगिरि के सिर पर।
जिसके प्रताप से शिखर स्वर्ण
यह चला पिघलकर भूतल पर॥

उदयाचल पे लाली का है
प्राची की लाला निर्झरिणी।
जो वन का नीली सरिताएँ
सिन्दूरा सुन्दर सी तरिणी॥

हैं सूर्यदेव के साथ-साथ
य अरुणदेव वैभवशाली।
जिनके पद पर हैं अनुज गरुड़
नत मस्तक ले अक्षत थाली॥

जिनके पर्गों का शरद कान्ति
क्षिति पर लहराती स्वर्ण वर्ण।
है यह अरुण का नव प्रकाश
नभ से भूतल तक रक्त वर्ण॥

युग भ्राता के मिलने से यह
बन गई शुभ्र अति प्यारी है।
प्राची की यह शोभा जिसकी
वसुधा पर सबसे न्यारी है॥

पावन प्रकाश का विजय हुआ
भागी रजनी अवनी तल से।
अचला थी मगन विनय को लख
दृग-कमल खोल अचल-जल से॥

विहँसी युग की सोई वाणी
प्रज्ञा का विमल प्रकाश हँसा।
हँस पड़े दिगम्बर भूतनाथ
डमरू, त्रिशूल, कैलाश हँसा॥

था क्षीर सिन्धु का हृदय मुदित
उस पर सोये कमलेश हँसे।
सुर सेवित शुभ सिंहासन पर
थे शची-सहित अमरेश हँसे॥

प्राची विहँसा, पश्चिम विहँसा,
युग का सोया करवाल हँसा।
जिससे चमचमा उठता क्षण में
पावन नगपति का भाल हँसा॥

मानवता के आदर्श हँसे,
दानवता का संहार हँसा।
गुरुता का पावन भार हँसा
युग का सोया उपहार हँसा॥

समता के पावन रूप हँसे,
शृङ्गारों का सम्भार हँसा।
लज्जा के रक्षक भूप हँसे
नारी - जीवन का सार हँसा॥

युग के सोए आश्रम विहँसे
थे सामवेद के गान हँसे।
विहँसे मन के अभिराम श्याम
श्री कोशलेश भगवान् हँसे॥

थे भानु सुता के तट विहँसे
सरयू के उर्मिल पट विहँसे।
सरिता विहँसी, निर्झर विहँसे,
भूतल के भारी भट विहँसे॥

पर्वत विहँसे, उपवन विहँसे,
कंकड़ विहँसे, पत्थर विहँसे।
तरु-तृण विहँसे, रज-कण विहँसे,
सोए सगर के स्वर विहँसे॥

विहँसा भूतल का महाकाल
सावित्री का वरदान हँसा।
सीता की अग्नि परीक्षा का
पावन वह अमिट विधान हँसा॥

युग की सोयी ममता विहँसी,
थे पंचवटी के राम हँसे।
हँस पड़े हिमालय, विन्ध्य, मरु
भारत के चारों धाम हँसे॥

युग की सोई माँ बहनों के
जौहर का अचल सुहाग हँसा।
हँस पड़े सत्य के नियम कठिन,
सब राजपाट का त्याग हँसा॥

युग का सोया बुन्देलखण्ड
विहँसा स्वर्णिम उपहार लिए।
मानवता का संसार लिए,
बीते युग का उद्गार लिए॥

जननी पद पर मिटनेवाले
रण वीर चले हथियार लिए।
कण-कण से विक्रम फूट पड़ा
रणचण्डी की हुंकार लिए॥

उर पर मुण्डों का हार लिए
जग जरा मरण व्यापार लिए।
हर हर शंकर का गूँज लिए
जलनिधि-सम जय जयकार लिए॥

था केसरिया बाना विहँसा
घर घर का वन्दनवार हँसा।
तोरण विहँसा, हँस उठा कलश,
मंगलमय जग व्यापार हँसा॥

गो ब्राह्मण के रक्षक विहँसे,
घन घन बजते घड़ियाल हँसे।
जीजीबाई के लाल हँसे,
युग के जाग्रत करवाल हँसे॥

हर हर-शंकर, हर हर शंकर
भनकर बढ़नेवाले विहँसे।
रण की गंगा पर सेतु बना
थे सब चढ़नेवाले विहँसे॥

मन की गति से भी गतिवाले
रग रग में नव हुंकार लिए।
रणवीरों का वरदान लिए,
नर-नर का जय जयकार लिए॥

नस नस में शक्ति अपार लिए
उर में स्वर्णिम संसार लिए।
बीती गाथा साकार लिए
भावी युग का उद्गार लिए॥

थे चपल तुरग गढ़ से चलकर
आगे बढ़कर हिनहिना उठे।
इन वीर बाँकुरे लालों के
बरछा भाले झनझना उठे॥

बाँहें फड़कीं, बिजली चमकी
सब महा अचल डगमगा उठे।
रवि के रथ के घोड़े नभ के
पथ पर झरझर सगबगा उठे॥

यह मनू विहँस आगे-आगे
घोड़े की बाग सँभाल चली।
पीछे नानासाहब की भी
वीरों सी नाहर चाल चली॥

ये स्वतन्त्रता के वीर व्रती
भावी भारत के लाल चले।
सुषमा मण्डित प्रासादों से
हँसते बालक तत्काल चले॥

घोड़े को रोक मनू बोली
"नाना साहब! अब रुक जाओ।
लो रोक राव साहब! भाला
आगे न बढ़ो तुम रुक जाओ॥

देखूँगी किसका बाजि आज
विजयी होता है चालों में।
पर्वत के उन्नत शिखरों पर
बरछी, भाले, करवालों में॥

मानवता की हुंकारों में
दानवता के सहारों में।
निर्ममता का फुफकारों म
अरि दल के तीखे वारों में॥'

यह कहते हुए मनू ने तब
अपने हय को सरपट छोड़ा।
नल के कौशल को लज्जित कर
बन गया पवन का वह जोड़ा॥

पलकों के गिरते-गिरते ही
विजयी घोड़ा हिनहिना उठा।
विकराल काल की जिह्वा सम
कटि का कटार टिमटिमा उठा॥

था कुरुक्षेत्र फुफकार उठा
हुंकार लिए रणवीरों का।
नभ के प्रांगण में गरज उठा
जयघोष समर हत वीरों का॥

यह दृश्य मनू की श्रद्धा नवल
नभ में थी चपला चमक उठी।
भौंहें फड़कीं, नाना विहँस,
अन्तक की छाती धड़क उठी॥

वह पुन विहँसकर बोल उठी-
"नाना! घोड़ा तैयार करो।
विचलित मत होना निज पथ से
बसकर बल्ला का भार धरो॥

घोड़े को एड़ लगाओ अब
या कह दो मेरी हार हुई।"
थी मनू लाड़िली के मुँह से
ऐसी निर्भय हुंकार हुई॥

बालक नाना सुन कड़क उठा-
"क्या है क्षत्रिय का धर्म यहा?
क्या वीर प्रसविनी माता के
बच्चों का होगा कर्म यहा?

युग युग में रण मतवाले का
यश केतु गगन में फहराता।
क्षत्रिय का पावन तेज अभी
जन जन मानस में लहराता॥

खोए स्वत्वों की रक्षा हो,
दीनों के धन की रक्षा हो।
जो नस नस में है विचर रहा
उस जाति-सदन की रक्षा हो॥

सिंहिनी सिंह को जब जनती
वन वन तरु तरु थराता है।
विकराल काल से लड़ने को
वह बार बार गुराता है॥

बस कर, चुप रह, अश्वारोहण
मैंने भी गुरु से सीखा है।
जिसका पावन साक्षी मेरे
कर का यह भाला तीखा है॥

हे वाजिन! तुझे मारुत-गति को
नीचा अब दिखलाना होगा।
अब मनू लाड़िली के हय को
गति से गति सिखलाना होगा॥

अम्बर को घहराना होगा,
पर्वत को थराना होगा।
माता के मुख की लाली को
चहुँ दिशि में फैलाना होगा॥"

इतना कहकर नानासाहब
जुट गए कला की बाजी पर।
जैसे बसन्त उल्लास भरा
जुट जाता है वनराजी पर॥

हँस एड़ लगाकर घोड़े को,
फिर किया सजग दृण कोड़े को
अपनी पैनी तलवार लिए
ललकार अनिल के जोड़े को॥

दो चार टाप देकर घोड़ा
दो पैरों पर हो गया खड़ा।
दृण भभक दौड़ दो डग उसने
अवनी पर निज पद दिया गड़ा॥

बालक नाना भी डरा नहीं
घोड़े पर डटकर अड़ा रहा।
घोड़ा भी टस से मस न हुआ
दो पैरों पर ही खड़ा रहा॥

पद रखकर वह हिनहिना उठा,
चल वक्र चाल चकपका उठा।
नाना इस विकट परिस्थिति में
भय-ग्रस्त हुआ सकपका उठा॥

कुछ बस न चला उस बालक का
घोड़ा निज वश से बाहर था।
अड़ियल था, पक्का टेढ़ा था,
अपनी धुन का वह नाहर था॥

था पड़ा पास में शुष्क काठ
तपती थी भूमि हुताशन सी।
गिर पड़े उसी पर नाना थे,
ध्वनि गरजी शत्रु-शरासन सी॥

सिर से शोणित बह चला त्वरित
उस वीर युवक के घावों से।
चीत्कार भयंकर निकल पड़ी
भावी भारत की चाहों से॥

तत्काल गिराकर नाना को
टपटप दौड़ा सरपट घोड़ा।
भय का न रहा उस पर शासन,
सिर पर न तड़पता था कोड़ा॥

इस करुण दशा पर मनू शीघ्र
अपने घोड़े से उतर पड़ी।
नभ से नीली चादर ओढ़े
साकार भवानी उतर पड़ी॥

विहँसी ऐसे संकल्पों पर,
इन शक्तिहीन अभिमानों पर।
बातों के सेतु बनाकर ही
यश के इच्छुक मदानों पर॥

"नाना साहब! क्यों सोते हो,
बलहीन, बने हो मर्दाने।
क्या इसी भुजा का बल लेकर
थे चले गगन भू पर छाने?"

नाना का सिर कर में लेकर
लोहू की धार तुरत रोकी।
जो विहँस रही थी अति मूछा
स्मिति से वह भी सत्वर रोकी॥

"जागो, जागो हे मौनव्रती !
अभिमान शान की रक्षा कर।
नर के मुण्डों की रक्षा कर,
गौ के मुण्डों की रक्षा कर॥

यह समय नहीं है सोने का,
हँस तन्द्रा का बन्धन तोड़ो।
रज में सोने का समय नहीं
माया की सब ममता छोड़ो॥

बोलो नाना ! तुम एक बार
मानवता भी हँसकर बोलो।
इस पराधीनता का बन्धन
मेरी तलवार विहँस खोलो।"

कुछ क्षण ही में फिर हुआ चेत
नीरवता का हो गया अन्त।
उल्लास भर गया कण-कण में
हो उठा प्रफुल्लित दिग्दिगन्त॥

यह देख [illegible]
क्षण भर-[illegible]।
बिजली [illegible],
झटपट [illegible]।

"नाना साहब ! अब बोल, बता,
यह हार हुई या जीत रही।
जो शक्ति अभी बातों में थी
वह सच्च हुई या रीत रही॥"

नाना से कहती [illegible] मनू
निज कर का अवलम्बन देती।
लोहू से लथपथ आनन को
थी ।पाछ - पोंछ सान्त्वन देती॥

घावों से पीड़ित नाना की
केवल पुतली ही फिरती थी।
कुन्वों के पौरुष-सागर पर
आशा की तरणी तिरती थी॥

अम्बर की क्रीड़ा बन्द हुई,
धरणी की क्रीड़ा बन्द हुई।
कण कण की क्रीड़ा बन्द हुई,
युवकों की क्रीड़ा बन्द हुई।

चल पड़ा वाजि गढ़ ओर तुरत
मारुत गति से गतिवाला था।
टापों से अरि सिर फोड़-फोड़
रण में लहरानेवाला था॥

वह एक हाथ से नाना को
गिरने से बैठ सँभाले थी।
सिर पर आकाश सँभाले थी,
कर में वह बाग सँभाले थी॥

पावन विठ्ठर मुसकाता था,
मधुमय-भविष्य मुसकाता था।
जन-जन की आशा से मिलकर
सब धर्म-कर्म मुसकाता था॥

नाना साहब का घाव देख
सब लोग बहुत ही घबराए।
मरहम पट्टी के लिये वैद्य
क्षण में ही वहाँ चले आये॥

पर घाव न उतना गहरा था
केवल चिन्ता का कारण था।
मानस की द्वन्द्व विकलता का
वह बना हुआ केवल व्रण था॥

जब मनू रात्रि को भोजन कर
निज कक्ष मध्य जाकर सोई।
तब राजभवन में भी न उधर
आता या जाता था कोई॥

धीरे से बोली "तात! सुनो
कुछ चोट लगी बाबा को है।
तिस पर इतने हैं लोग व्यग्र
भारी चिन्ता दादा को है॥

यह है क्षत्रिय का धर्म नहीं
शोणित को लख घबरा जाना।
उसका तो यह बाना ही है
निर्भय अन्तक से टकरा जाना॥

अवयव अवयव भी कट जाए
पर गरज गरज आगे बढ़ना।
शस्त्रों से रिपु को मार मार
जय मंत्र सतत पढ़ते रहना॥"

"बेटी ! नाना का घाव बड़ा
दो अंगुल मात्र रहा होगा।
यह ज्ञात नहीं उसमें से ही
अब कितना रक्त बहा होगा ?"

"हे तात ! सुनाते थे मुझको
इतिहास पुराने वीरों का।
सागर को शोणित से भरकर
न डूबनेवाले रणधीरों का॥

हँसकर शोणित से पिचकारी
भर फाग खेलनेवालों का।
चोटी चोटी पर अरि दल का
हँस वार रोकनेवालों का॥

आख्यान सुनाया है गुरु ने
पौरव नरेश के घावों का।
रण में लड़नेवाले उनके
तन के उन अस्सी घावों का॥

फिर भी छाती उत्तान रही
घावों की थी परवाह नहीं।
उस वीर पुरुष के मुख से थी
निकली रंचक भी आह नहीं॥

हे तात ! सोचते थे रण को
क्या इन्द्रजाल का खेल अभी ?
इससे न कभी कट सकती है
अरि की बोई विष-बेलि अभी॥"

"सुन घात छबीली ! नाना तो
सोलह वत्सर का बालक है।
वह अभी नहीं सह सकता है,
वह नहीं घाव का पालक है॥"

"जिस पार्थ-पुत्र की आप सदा
थे मुझे सुनाते वीर कथा।
वह सात महारथियों का था
कैसे सह पाया घात-व्यथा॥

वह भी सोलह वत्सर का ही
अपनी माता का प्यारा था।
कर चक्रव्यूह का खण्ड-खण्ड
रिपु को उसने संहारा था॥

जिसने समर में अरि-दल को
एकाकी लड़ना सिखा दिया।
बढ़कर नभ के मस्तक पर था
गौरव का टीका लगा दिया॥

भूतल के वीर सपूतों को
समर में मरना सिखा दिया।
हँस कुरुक्षेत्र की वेदी पर
निज प्राण-सुमन था चढ़ा दिया॥"

"पर हे बेटी ! वह समय नहीं
बीते युग का वह बाना है।
केवल उसकी कमनीय कथा
सुन सुनकर समय बिताना है॥"

"हे तात ! यही आकाश धरा
हम सबका भी है रूप यही।
नभ में है अभी वही रवि-शशि
तारों का वेश अनूप वही॥

हिमगिरि का अभी ललाट वही,
गंगा की पावन धार वही।
यमुना का श्यामल रूप वही,
संगम का अतुलित प्यार वही॥

कमला का पावन धाम वही,
जन-जन में रमता राम वही।
ब्रज का ब्रज-मण्डल अभी वही
वृन्दावन सुन्दर धाम वही॥

शंकर की है शिवपुरी वही,
कैलाश अचल है अचल वही।
जन-जन के मुख में गूँज रहा
बम बम शंकर की भजन वही॥

उस वीर शिवा की अ-र भूमि
शिवनेरी का है दुर्ग वही॥
है वही अभी हल्दीघाटी
चित्तौर दुर्ग है सदा वही॥"

सुन कर पुत्री का गूढ़ प्रश्न
हो उठे पिता भी शीघ्र विकल।
उत्तर के लिये लगी कहने
"बतला दे तात ! मुझे प्रतिपल॥"

यह देख सुता की आतुरता
वे कहने लगे पुन हँसकर।
जिनके भय स भारत माता
हतबुद्धि पड़ी करती थर थर॥

"अब अँगरेजों के वैभव का
है सूर्य गगन में चमक रहा।
जिससे हत होकर देश तेज
भूतल में खोया दमक रहा॥"

कह उठी मनू "हे तात! अभी
यह भारतवर्ष हमारा है।
इस वसुधा पर कोई न सदा
रह सकता जीवन सारा है॥

जो बात आपने कही अभी
वह कायर का उर कहता है।
वह हलवाहे का बैल बना
गाली या मारें सहता है॥

मानव ने हिमगिरि को लाघा,
जलनिधि को गण्डुलि पर पीया।
अन्तक की छाती कँपा-कँपा
अवनी पर युग-युग तक जीया॥"

"नय और बड़ी होगी बेटी।
इसका तुमको अनुभव होगा।
संसार कहाँ है, कैसा है,
यह ज्ञान तभी सम्भव होगा॥"

"मैं डरनेवाली नहीं तात !
विघ्नों के तप्त अंगारों से।
यह सिर न कभी झुक सकता है
वैरी के तीखे वारों से ॥

वह कहाँ गया उपदेश सबल
जो आप मुझे सिखलाते थे ?
अब कहाँ गया वह सती-चित्र
जो आप मुझे दिखलाते थे ?

कहते थे कर्णवती बनना
अरि गण के अत्याचारों में।
कहते ताराबाई बनना
रिपु दल की विकट कटारों में ॥

हाड़ारानी सम हाड़ हाड़
माँ अचल पर बिखरा देना।
अरि कर का तन पर स्पर्श न हो,
यह पाठ न तुम बिसरा देना ॥

माता सीता बनकर भू पर
निज सत्य धर्म सिखला देना।
पावन गीता बनकर जग में
नव सत्य पन्थ दिखला देना ॥

जीजाबाई सम अवनी पर
निज कीर्ति ध्वजा फहरा देना।
दुश्मन के सिर का मुण्ड-माल
शङ्कर को विहँस चढ़ा देना ॥

उत्तर देने में हुए मौन
क्षण मोरोपन्त छबीली का।
इस वाक्य-युद्ध में हुई विजय
निशि में उस सद्गर्विली का॥

इसलिए मनू से अधिक रात
गत होने की ही बात कही।
यह गूढ़ समस्या रजनी के
तम अंचल में ही पड़ी रही॥

सो गई मनू, पर सो न सके
थे पन्त समय की उलझन में।
आगे की विकट समस्या भी
आती न रही कुछ सुलझन में॥

ये सोच रहे थे—'मनू आज
वय से आगे है मुसकाती।
इसका विवाह करने की है
यह शुद्ध अवस्था बतलाती॥

पर वर बराबर न मिला को
था भारत-भू के अंचल पर।
आशा मुसकाकर सो जाती
थी तरु के पुलकित-दल-दल पर॥

यह बात सोचते हुए पन्त
सो गए निशा के अंचल पर।
गड़ गया स्वप्न का विजय केतु
चेतना भूमि के दृगतल पर॥

सोने के रश्मि - हिंडोले पर
जीभर जो झूला करती थी।
जिसकी छवि का आलोक निरख
नव कलियाँ फूला करती थीं॥

कोयल पंचम स्वर में जिसके
स्वर का यश गान सुनाती थी।
शफरी जिसके चल नयनों की
चंचलता कुन्दक बताती थी॥

जिसके निश्वासों का परिमल
मलयानिल नित्य बहाता था।
जिसके मुख छवि - सर में नित ही
शशि किरणों सहित नहाता था॥

हँस जिसके ललित कपोलों से
लेता पाटल था नव लाली।
जिसकी मधुमय स्मिति के रस से
भर जाती सुमनों की प्याली॥

जिसके कच की श्यामलता से
कालिमा अमा भी लेती थी।
निज-चन्द्र-चाँदनी - सा जिसका
रक्त कोमल तन धोती थी।

नूतन आभा नव किसलय से
मिल मिलकर ज्यों मुसकाती है।
रक्तिम पल्लव के अंचल में
लज्जा से छिपती जाती है॥

जैसे प्रियतम माधव से मिल
कलियाँ सुख से मुसकाती हैं।
पद पूजन में रंजित वर का
दल-कर से गन्ध चढ़ाती हैं॥

वैसे ही मनू लाड़ली भी
पति पद सेवा दिखलावे प्रभु।
अपने सुन्दर मन का इच्छित
वर सुखद विश्व में पावे प्रभु॥

यह कह कहकर पुर की मधुएँ
जीवन की घड़ी बिताती थीं।
उनकी उर सरसी में प्रतिदिन
वात्सल्य वीचि मुसकाती थी॥

अब लगे खोजने योग्य पात्र
श्री मोरोपन्त चतुर्दिशि में।
चिन्ता के शासन में उनको
निद्रा न कभी आती निशि में॥

तात्या दीक्षित से चली बात
लाड़ली मनू के परिणय की।
सुखमय—भविष्य के अंचल पर
जगनवाले उस निर्णय की॥

दीक्षित थे पुर-जन में कुलीन
थे सर्वयोग्य घर क ज्ञाता।
पावन स्वधर्म के नव प्रतीक
थे वयोवृद्ध – विद्यादाता॥

मन में उस वृद्ध द्विजोत्तम ने
जो जो सुयोग्य वर ठहराया।
उसका न मिल सका जन्म-पत्र
इसलिए निराशा-तम छाया॥

सहसा दीक्षित को हुआ स्मरण
झाँसी के नृप गंगाधर का।
सर्वज्ञ, कुलीन, सुयोग्य धनी
सुन्दर, दृढ़-सत्य-धनी वर का॥

चल पड़े शीघ्र वे झाँसी को
उर में नवीन उल्लास भरे।
नभ में लहराते थे पथ के
सुन्दर गिरि-मरकत हरे-हरे॥

थी खड़ी वनाली ले माला
वन रानी को पहनाने को।
तरुवर थे खड़े मधुर फल ले
जनता को मुदित चढ़ाने को॥

कल-कल ध्वनि में निर्झर प्रतिपल
वनमाला का गुण गाता था।
पथ के दूरागत पथिकों का
तन-ताप मिटाता जाता था॥

मद-मस्त मयूर मगन होकर
नित नृत्य-कला दिखलाते थे।
जल-पूरित विमल सरोवर में
अलिगण गुन, गुन, गुन गाते थे ॥

नव रम्य-सुखद-पथ पर झुककर
तरुवर नव व्यजन डुलाते थे।
मन अनायास था रमा हुआ
दीक्षित जी बढ़ते जाते थे ॥

पुलकित तन था, प्रमुदित मन था,
मानस में था उल्लास भरा।
अभिलाष बीज के उगने से
नव भाव क्षेत्र था हरा भरा ॥

वे पहुँच गए झाँसी प्रदेश
मानवी कला से न्यारा था।
था प्रकृति अंक में खेल रहा
वह रानी का अति प्यारा था ॥

झाँसी की राज सभा सज्जित
बैठे नृप थे सिंहासन पर।
सामन्त, पारिषद, सेनानी
बैठे थे निज-निज आसन पर ॥

मणि-रत्नों की उजियाली में
चमचम वह सभा चमकती थी।
भी सौ दिनकर सम तेजमयी
राजा की कान्ति दमकती थी ॥

दीक्षित जी का था बड़ा मान
राजा के सुखमय शासन में।
वे थे श्रद्धा की सौम्य मूर्ति
विश्वास बना था जन-जन में॥

तब सभा विसर्जित होने पर
मारुत गण धीरे से डोले।
एकान्त स्थान में दीक्षित जी
साहस करके नृप से बोले॥

'प्रभुवर! है केवल एक विनय
आज्ञा हो तो मैं अभी कहूँ।
यदि समय न हो सुनने का तो
प्रभु! क्षमा करें, मैं मौन रहूँ॥

यह बात अटपटी सुनते ही
भूपति धीरे से विहँस पड़े।
दीक्षित जी की उर-सरसी के
अभिलाष-कमल सब विहँस पड़े॥

कोमल वाणी में नृप बोले
"जो कहना है वह सकते हैं।
यदि कोई गूढ़ समस्या हो
तो उसको भी कह सकते हैं॥'

यह देख सुअवसर उस द्विज ने
मृत राना का आख्यान कहा।
जिसको सुनते ही भूपति ने
उस पर वह पिछला पाप सहा॥

पर सोच नहीं है अब प्रभुवर !
कुछ वश न किसी का चलता है।
सुख-दुख के चलने पर मानव
जीवन में पलता रहता है॥

झाँसी की जनता रानी के
आगम का भावन करती है।
अपने उर में राजा के हित
वह पुत्र - कामना भरती है॥

दीक्षित जी की इन बातों पर
भूपति भी आशा पट खोले।
ले जन्म पत्र निज हाथों में
गम्भीर भाव में वे बोले॥

"इस मेरी पत्री में इतना
तेजस्वी ग्रह मुसकाता है।
जिससे न किसी से मिल पाती
नव - विघ्न जलद लहराता है॥"

सुनकर राजा की बात शीघ्र
द्विज ने कर में वह पत्र लिया।
मिल गया मनू से जन्म पत्र
नृप को गुरु न वह पत्र दिया॥

खिल गया झटिति नृप का मानस
तन रोम - रोम भी मुसकाया।
भावी रानी का ध्यान तुरत
नृप के उर में आ लहराया॥

सब मनू वंश की पुण्य कथा
सुन गए द्विजोत्तम से सुख से।
सुनकर कन्या की रूप कथा
कुछ कह न सके गद्‌गद् मुख से॥

हो गया मनू से ब्याह ठीक
झाँसी के नृप गंगाधर का।
सर्वज्ञ, कुलीन, सुयोग्य, बली
सुन्दर दृढ़, सत्य धनी वर का॥

दीक्षित जी ने आकर बिठूर
यह मुदित नया सम्वाद कहा।
श्री बाजीराव पन्त ने भी
जिसको हँसकर स्वीकार किया॥

हो गया प्रथम ही यह निर्णय,
झाँसा में ही होगा विवाह।
यह मनू बनेगी पटरानी
झाँसा के गढ़ की स उत्साह॥



चौथी हुंकार

प्रकृति उठ, सुख से आँखें खोल
देखने लगी सकल संसार।
धरा पहने थी नीलम हार
जगत का था सुखमय व्यापार॥

सरों में जगकर सलिल-विलास
खेलने लगे पवन से खेल।
खुल गया जग में सुख-भण्डार
प्रभा का हुआ छटा से मेल॥

पराजित घोर तमिस्रा मौन
लगी लेने गिरि गह्वर-छाँह।
बतान लगी अमन्द सुगन्ध
मधुप को मधु से सीची राह॥

खुल गया प्राची का प्रासाद
विहँसने लगे हेममय-द्वार।
दमकने लगा छटा के साथ
उषा के उर का अरुणिम-हार॥

सँभाले एक हाथ से हार
दूसरे से लज्जा का भार।
खड़ी नभ पनघट पर साकार
देखता था उसको संसार॥

खींचती सभी दिशाएं मौन
पकड़कर स्वर्ण डोर की छोर।
निकलने लगा स्वर्णमय कलश
हुआ जग क्षण में आत्म विभोर॥

भरा था जिसमें जीवन सार,
प्रभा रखवाली करती घूम।
धरा भी स्वयं बनी थी धन्य,
गगन पर थी उत्सव की धूम॥

उषा ने कोमल कर से खींच
उसे हँस जग में दिया उड़ेल।
पानकर जिसको विश्व महान्
खेलने लगा प्रभा से खेल॥

विहँसन लगी प्रकृति तत्काल,
खिल गए भाँति भाँति के फूल।
मगन था गगन, प्रफुल्लित भूमि,
प्रभामय अम्बर-जल थल धूल॥

घूमने लगा मस्त मधुमास
धरा पर सुख से चारों ओर।
कहीं पर होते राग के गान,
कहीं पर नाच रहे थे मोर॥

जगाने लगा प्यार के साथ
अभी जो सोए थे नव फूल।
धरा पर माधव का सन्देश
गए थे भ्रममय में जो भूल॥

धरा थी सुख में आत्म विभोर,
नहीं था कहीं द्वेष अपमान।
देवगण स्वर्गलोक में बैठ
गा रहे थे जिसका यश-गान॥

जहाँ के विमल अंक में नित्य
गूँजते थे वीरों के नाद।
चमकता हथियारों से पूर्ण,
यही है झाँसी का प्रासाद॥

पहाड़ी विषम भूमि पर दुर्ग
बना है परकोटा चहुँ ओर।
मधुर कलकल निर्झर का शब्द
बना रहता निशि दिन चित-चोर॥

गगनचुम्बी - भवनों के केतु
उड़ रहे थे अविरल - अविराम।
श्रम का हरकर वे स्वेद
व्यजन झलकर देते विश्राम॥

मेघ मालाओं का कर स्पर्श
धवल - प्रासादों का कल-कण्ठ,
जान पड़ता था ऐसा दिव्य
शम्भु-तन पर हो नीला - कण्ठ॥

धवल नगरी, कञ्चन प्राकार
अमर-गिरि-सम लगता सुख-स्थान।
अमरपुर मानो करके मान
लगाए हो अवनी पर ध्यान॥

भवन की धवल पताका नित्य
खेलती थी नभ में अविराम।
कहीं यह कौशिक द्वारा त्यक्त
व्योम-गंगा ही है छवि धाम॥

बँधे थे जिसके चारों ओर
सुखद नव सुन्दर वन्दनवार।
राजती जिसमें आठों सिद्धि
ऋद्धि का पावन पारावार॥

निपुण रमणी ले अक्षत थाल
रँग रही थी हल्दी के साथ।
दूसरी रचती परिणय चौक
मुदित नव रुचिर कला के साथ॥

बने थे पथ में सुखद वितान
वस्त्र फूलों के चारों ओर।
मानकर जिनको पुष्प मिलिन्द
महक में होते आत्म विभोर॥

गड़े थे सिंह पौर पर दिव्य
रुचिर कदली के नूतन स्तम्भ।
हर रहे थे प्रतिपल सविनोद
रमणियों के उरु के सब दम्भ॥

बँधा था उस पर पट के साथ
सुखद हारे-मणियों का हार।
विहँसता गढ़ के चारों ओर
नवल सुषमा का पारावार॥

द्वार पर शहनाई का शब्द
पवन का भी बनता चित-चोर।
नाचता रहता था सविनोद
चराचर का निशि-दिन मन-मोर॥

बचा था अब तक संकट झेल
जाति का यदि गौरव-अभिमान,
पूर्वजों के पौरुष का गान,
अमरता का पावन वरदान,

विश्व में जो है अभी महान्
धरा पर धर्म कर्म का मान।
मृत्यु कर जोड़े रहती नित्य
देखकर जिनका अनुपम दान,

वही है इस भारत का प्राण
पड़ा है जिसका झाँसी नाम।
गड़ी है जिस पर अरि की आँख
वही है भारत का छवि धाम॥

चमकता रहता चमचम मुकुट
जहाँ सुकृत भूपों के शीश।
जाति का गौरव, शौर्य महान्
मुदित हो देते थे आशीष॥

राज्य था भू पर सुन्दर अनूप,
देवन का रहता था चाव।
फहराता था जिसका यश केतु
नाम था श्री गंगाधर राव॥

राज्य में नहीं कहीं षड्यंत्र
प्रजा में नहीं व्याप्त था शोक।
सुना सकते सब मन की बात
नहीं था राज भवन में रोक॥

न्याय में होता शुद्ध विचार
नहीं था कहीं कपट व्यवहार।
दीन दुखियों को मिलता दान,
अतिथि पाते समुचित सत्कार॥

सामने कुरुक्षेत्र था दिव्य
सुशोभित थे रथ पर भगवान।
मोह में पड़े पार्थ को कृष्ण
दे रहे थे गीता का ज्ञान॥

दुष्ट दुःशासन का दुष्कृत्य
द्रौपदी करती हाहाकार।
बढ़ाते थे माधव छिप चीर
हो रहा था पट पारावार॥

सुखद तापस बाला का चित्र
टँगा था एक द्वार की ओर।
दौड़ते हरिण झुण्ड के झुण्ड
विचरते कीर, पपीहे, मोर॥

इसी नव शुभ मुहूर्त में शीघ्र
मनू आ गई पिता के साथ।
देख भावी साम्राज्ञी रूप
हो गई झाँसी भूमि सनाथ॥

लगीं बालाएँ करने शीघ्र
विवाहोचित नव ललनाचार।
लगा होने वैदिक-विधि सिद्ध
रुचिर - वैवाहिक - शुभ-व्यवहार॥

हुए नर-नारी सभी प्रसन्न
देख रानी का सुन्दर रूप।
त्यागकर ब्रह्म-कला ही स्वर्ग,
अवनि पर आई मूर्ति अनूप॥

मगन था गगन, धरा थी धन्य,
प्रभाती गाने लगा विहान।
मनू के कमलानन पर दिव्य
चमककर जागा सेंदुर दान॥

गूँजने लगा वेद का मन्त्र
सनाथाओं ने गाया गीत।
सुशोभित थे आसन पर भूप
रानता तन पर नव उपवीत॥

पाठकगण भूल न जायेंगे
हो गई मनू लक्ष्मीबाई।
जिसने भारत की कीर्ति-ध्वजा
नभ-मस्तक पर थी फहराई॥

—

पाँचवीं हुंकार

प्रभाती गाता विहग-समाज
जगत् में है सुषमा का राज।
कर रहे जड़-चेतन निज काज
धरा पर धन्य शान्ति का साज॥

बोलते कहीं पपीहे मोर,
कहीं होती दादुर ध्वनि घोर।
कहाँ है छिपा अरे! चित-चोर
बना देता जो आत्म-विभोर॥

देखती हूँ मैं नूतन बात
दिवस का मुख लगता है म्लान।
हमारे वीरोचित अभिमान
मुझे ही लगते हैं अनजान॥

नहीं इस भव्य भवन के बीच
हुआ है जिसका यह शृंगार,
बैठकर कर सकती उपकार
या कि इस भारत का उद्धार॥

भोग का है यह मेरा साज,
छूटता आता पौरुष-संग।
नहीं पा सकती चपल-तुरंग
बरजते ये मेंहदी के रंग॥

मिला था जो नभ से वरदान
विहँसती थी जिस तन पर धूल,
कर रही हूँ उसका अपमान
राजते आज उसी पर फूल ॥

घेरते नभ को काले मेघ
जगत् में आया हो भूडोल ।
और मैं बैठ सुखों के बीच
बोलती रहूँ काकली बोल ॥

धरा पर हो पतझड़ का राज
भूमि का लुटता हो नव साज ।
और मैं बैठ दासियों बीच
सजाऊँ अपना नूतन साज ?

धुले महलों का अरुण सुहाग
मचा हो भूतल पर चीत्कार ।
नित्य मैं खेलूँ हँस-हँस फाग
और यह लूटूँ व्यंजन बहार ॥

सोचकर रानी हुई अधीर
फड़कने लगी अचानक बाँह ।
काँपने लगा समस्त शरीर
उठी नव असि-धारण की चाह ॥

विवश थी, बँधी हुई थी आप,
विहँसता नस नस में उत्साह ।
हृदय पर छाया था सन्ताप,
सोचती पति आज्ञा निबाह ॥

विवश थी वह करने से कम
झलक आया नयनों में नीर।
धर्म का होता दुस्तर बन्ध
सोचकर रानी हुई अधीर॥

यही चिन्ता थी उर में व्याप्त
शान्ति में डूबा था रनिवास।
महल का कण-कण करता नित्य
महारानी पर यह उपहास॥

इसी क्षण वहाँ दासियाँ तीन
आ गईं कर जोड़े तत्काल।
देख आँखों में आया नीर
हो उठीं वे अवाक् उस काल॥

देख रानी ने उनको शीघ्र
पोंछकर किया अश्रु-जल दूर।
विहँसने लगीं बैठकर स्वस्थ
छिपाती हुई हृदय का पीर।

पूछने लगीं त्वरित वे हाल
"कहाँ है तुम लोगों का धाम?
यहा पर आई हो किस हेतु
और क्या तुम तीनों का नाम?"

यही है हम लोगों का धाम
आपकी दासी हैं सिर-ताज।
यही है हम लोगों का कम
[illegible]ती रहें आपका साज॥

आपकी सेवा अपना धर्म
यही है स्वर्ग यही अपवर्ग।
यही है हम लोगों का लक्ष्य
इसी पर है जीवन उत्सर्ग॥

दासियों की सुनकर यह बात
जगा रानी में नव उत्साह।
पूछने लगीं प्रश्न वे शीघ्र
विहँस कर लेती उनकी थाह॥

"कभी क्या वल्गा ले निज हाथ,
तपाई कोमल तन को आग?
दिखाया है स्वदेश को प्यार,
कभी देखा है समर भाग?

सुनी हैं वीरों की जयकार?
सही है तलवारों की मार?
कभी घोड़े पर हो आरूढ़
चलाई है चमचम तलवार?

कभी की है मुद्‌गर से भेंट?
किया है लक्ष्य भेद शर फेंक?
सहा है कभी घाव पर घाव?
निबाही है मरने तक टेक?

कभी मल्लयुद्ध अखाड़े बीच
दिखाया है तुमने पुरुषार्थ?
कभी ललनाओं का शुभ ध्येय
विहँस तूने है किया कृतार्थ?"

महारानी का सुन यह प्रश्न
दासियाँ बैठीं थीं चुपचाप।
प्रश्न के उत्तर में चुपचाप
रहीं थीं धीरे धीरे काँप॥

व्यंग से बोली रानी शीघ्र
"जानती नृत्य, वाद्य या गान?
सजाकर रंग भवन का साज
किया है दर्शक का सम्मान?"

प्रश्न यह सुनते ही तत्काल
दासियों में छाया नव हर्ष।
जगा उन सबके तन में नव्य
अभी तक का सोया उत्कर्ष॥

हो गई रानी आगे मौन
सोचने लगी समय का फेर।
जगा अपना नारी इतिहास
लिया क्षण में मानस को घेर॥

प्रभो! कैसे होगा उद्धार
बचेगी कैसे अपनी लाज?
देखती हूँ मैं आँखें खोल
घना नारी का है यह साज॥

मिटेगी कर्णवती की आन,
धुलेगा पन्ना का सम्मान।
धन्य नारी के गौरव मान,
छिपा रहा वीरोचित अभिमान॥

यही दुष्यन्त प्रिया का धाम
गूँजता कण-कण में यह नाम।
यहीं पर पांचाली की लाज
बचा पाए छिपकर घनश्याम॥

भजूँगी इन सतियों का नाम,
पढ़ूँगी कर्मयोग का पाठ।
बना दूँगी इस तन का राख
सजाऊँगी स्वदेश का ठाट॥

जगाऊँगी फिर नारी जाति
करूँगी सेना को तैयार।
चढ़ाकर मुण्डों का नव हार
करूँगी माता का शृङ्गार॥

भले ही हो दुखों का घात
किन्तु नस-नस में फहरे केतु।
चढ़ाऊँगी अरि उर का रक्त
बना नारी सेना का सेतु॥

भले ही हँसे गगन मुँह मोड़
समझकर यह कोरा अभिमान।
चढ़ाकर बलि वेदी पर शीश
करूँगी मातृ-भूमि का मान॥

यही है गगन, यही है भूमि
हिमालय यही, विमल कैलास,
यही है रवि-शशि का भी रूप
यहीं निशि दिन का सरस-विलास॥

जगाया जा सकता है आज
पुन सतियों का पावन - त्याग।
लगाई जा सकती है आज
पुन पतितों के उर म आग॥

बनाकर मातृ - भूमि को मुक्त
किया जा सकता है उत्थान।
उड़ाया जा सकता है दिव्य
अन्य देशों में अरुण निशान॥

शान्त हो गया हृदय विक्षोभ
पुन टूटा रानी का ध्यान।
सुनाने लगीं पुन वे शीघ्र
हृदय का अपना लक्ष्य महान॥

बढ़ेगा जिससे जग के बीच
पुन इस भरत-खण्ड का मान।
मिलेगा जन जन को निज स्वत्व
विहँस आयेगा सुखद - विहान॥

किंकरी नहीं, बनेगी सत्य,
सजाओ कामल तन पर वर्म।
धरा का भार मिटाओ शीघ्र,
करो वीरों सा दुस्तर - कर्म

सिखाऊँगी सबको तलवार,
बनोगी सब अति कुशल सवार
देखकर तुम लोगों का वार
मचेगा अरि दल में चीत्कार॥

सजाए हैं जिस तन पर फूल
सजाएगा अब उसे निषंग।
चलेंगे भाले, बरछी, तीर
कटेंगे रिपु दल के सब अंग ॥

सजा जो है सुन्दर रनिवास
जहाँ करता है विभव निवास,
वहाँ अब होगा शस्त्रागार
इसी से होगा नवल विकास ॥

शपथ खाओ छोड़ोगी राग,
शपथ खाओ कर दोगी त्याग।
शपथ लो अर्पित कर निज प्राण
जगाओगी इस भू का भाग।"

दासियाँ सुनकर ऐसी बात
हो गईं क्षण में शक्ति समान।
गूँजने लगा हृदय में शीघ्र
जाति गौरव का सोया गान ॥

जगा अपना सोया अभिमान
जगा उर में समाज उत्थान
जगी युग युग की महती आन,
जगा सतियों का जीवन दान ॥

त्वरित किंकरियों की हुंकार
जगाने लगी सुप्त-रनिवास।
शान्त हो गया कर्म-उपहास,
विहसने लगा धर्म मधुमास ॥

"शपथ है घर के वन्दनवार,
शपथ है पति का अतुलित प्यार।"
शपथ है पति गृह के नव हार
करूँगी माता का उद्धार॥

शपथ है मण्डप के कल-गान,
शपथ पुर-जन के कन्या-दान।
शपथ जीवन के मधुमय फाग,
शपथ माँगों के अरुण विधान॥

शपथ है तन के नव शृंगार,
शपथ मेंहदी के सुन्दर रंग।
शपथ तन पर के भूषण-भार
शपथ प्रियतम का अय से संग॥

शपथ है जीवन में मधुमास,
शपथ जीवन में व्यंजन-बहार।
शपथ वैभव का है उपभोग
करूँगी माता का उद्धार॥

बनेगा अभी योगिनी वेष
सुनूँगी गीता का उपदेश।
मिटेगा जब जन-जन का क्लेश
समा जाऊँगी प्रियतम-देश॥

सखी सुन्दर की सुन ललकार,
सुना जब पापी का अभिमान।
सखी सुन्दर की सुन हुंकार
गूँजने लगा विजय का गान॥

सुनी जब रानी ने हुंकार
दासियों का ऐसा संकल्प।
सफल होगा लख निज उपदेश
मिटा रानी का सकल विकल्प॥

लगा होने कुछ दिन पश्चात्
महारानी का रण उपदेश।
गरजने लगा त्वरित गढ़-बीच
विपुल नारी सेना का वेष॥

जहाँ अब तक था हास-विलास
वहाँ अब गूँज उठी हुंकार।
जहाँ था पायल का कल-नाद
वहाँ झन झन करते हथियार॥

जहाँ था चमक रहा भुजबन्ध
राजने लगा वहाँ अब चर्म।
चमकता रहा जहाँ कौशेय
वहाँ हो गया वम ही वर्म॥

फटीं हुंकार

निशा सुन्दरी शान्ति सखी के
साथ कर रही थी शृङ्गार।
श्याम वदन को जब दर्पण में
देख रही थी बारम्बार॥

गूँथ रहा नव कुन्तल में थी
उडुगण कुसुम नवल सुकुमार।
सजा रही थी वह चूनरी में
लेकर नभ गंगा का हार॥

चमक रहा कौशेय वस्त्र सा
विमल-चन्द्र किरणों का तार।
बरस रहा था मृदुल-स्मित से
शिशिर-सुधा का मधु मनुहार॥

रुक-रुककर वह प्रिय हिमांशु भी
देखा करती थी नव राह।
कभी मधुर कलरव में गाती
जलधि वीचि में अपनी चाह॥

उधर विमल प्राची से आता
पड़ा दिखाई शशि सुख लाल।
सुन्दर ज्योत्स्ना शशि मानस में
रही नव सुधा स्मित से घोल॥

मी०/६

पर न हँसी आती थी मुख से
बदन हो गया था कुछ लाल।
घला रहा था गहरी चिन्ता
रस में विष-सा यह उस काल॥

पग न पड़ रहा था सीधे से
खिंची आ रही चिन्ता रेख।
हुई विकल रजनी प्रियतम का
कुँभलाया सा आनन देख॥

रंगभवन भी सजा हुआ था
फैलाता था मुक्ता-हास।
रानी के तन के आभूषण
दिखा रहे थे नवल हुलास॥

करके नव शृङ्गार नृपति की
रही देखती सुखमय राह।
कब प्रियतम इस छवि को देखे
विकल कर रही थी यह चाह॥

इसी बीच कुछ अनमन मन से
आ पहुँचे भूपति तत्काल।
चिन्ता की रेखा थी मुँह पर
आँखों के कोरे थे लाल॥

प्रियतम ने सोचा, रानी के
सम्मुख प्रकट न हो यह भाव।
एक प्राण था दो काया में
आ न सका इसलिए दुराव॥

रानी बोली निज वल्लभ से
"यह कैसी चिन्ता की रेख ?
अबतक तो सपने में भी मैं
ऐसा नहीं सकी थी देख ॥

आज न पहले से मुसकाते
ये मानस के कोमल भाव।
आज न लहराते हैं चंचल
रूप कुसुम पर ये नव चाव ॥"

मन का भाव छिपाकर राजा
लगे विहँसने फिर तत्काल।
हँसी हँसी में ही बातों का
लगा फैलने माया जाल ॥

नृप बोले "हे प्रिये ! सदा ही
करती हो वीरों की बात।
सतियों को घोड़े पर चढ़ना
तुम्हीं सिखाती हो दिन-रात ॥

पटा, बनेठी, अस्त्र चलाना
घोड़े पर होना है आरूढ़।
प्रतिपल सिखलाती रहती हो
असि की सब विधाएँ गूढ़ ॥

ऐसी शिक्षा पाकर जग में
क्या कर सकती वे उपयोग ?
इनको तो पति गृह में रहकर
करना है सुख का उपभोग ॥

घर में ही है पड़ते इनको
करने नित्य अनेकों काम।
गृहिणी बनकर, शिशु पालन कर
देती हैं पति को विश्राम।।"

प्रियतम की ये बातें सुनकर
रानी मुसकाई तत्काल।
व्यंग भाव से लगी सुनाने
कायर मानव की मति चाल।।

"राजपूत वीरों के रहते
ललनाओं ने ली तलवार।
शीश चढ़ाकर उनसे पहले
गई स्वर्ग को विहँस सिधार।।

रूपगढ़ की राजसुता का
अब भी हँसता सुन्दर देश।
नीच पिता था चला बेचने
जिसकी लज्जा का शुभ वेष।।

रजत खण्ड के लिए यवन को
कन्या देनी की स्वीकार।
ऐसे पिता और माता को
अवनी-तल पर है धिक्कार।।

इसी जाति ने राज-मान या
नृप से पाने को सत्कार।
अपनी माँ-बहनों से हँस-हँस
सजा दिया मीनाबाजार।। —

तब ललनाओं के गौरव की
तरणी की काँपी पतवार।
कर्णवती ने तभी उठाई
अपनी प्यासी विकट कटार॥

जिस नृप के सम्मुख झुकते थे
राजाओं के शीश अपार।
कर्णवती उसकी छाती पर
पढ़ी गरजकर लिए कटार॥

चूड़ावत ने क्षत्रिय होकर
पाया कायरता का गात।
बार बार शंका की करता
हाड़ारानी से वह बात॥

रानी ने जब देख लिया अब
नहीं त्याग का है विश्वास।
और वहाँ प्रियतम संगर में
जाने से हो रहे हताश॥

लेकर कर में चमचम करती
रक्त-तृषित अपनी तलवार।
प्रियतम की अंजलि में अर्पित
किया त्वरित निज शीश उतार॥

इसीलिये मैं भी कहती हूँ
सखियों को देकर तलवार।
कभी न नर बन सके पायेगा
नारी-लज्जा की पतवार॥

जब तक तुममें उष्ण - रक्त है
तब तक समझो निज सम्मान।
नारी के पौरुष पर आश्रित
नारी का जीवन-उत्थान॥

देखो! नारी की लज्जा से
नर ने है खेला नित खेल।
और नित्य नाटकशाला में
लज्जा रखते सभी सकेल॥

देश भक्ति का मान दण्ड है
ललनाओं की जैविक शक्ति।
ललनाओं की सुदृढ़ भक्ति ही
विमल - देश की है शुभ - भक्ति॥

अब तो सुख के पीछे मानव
दे सकता है अपना देश।
लेकर नश्वर वैभव जग में
सजा रहा है अपना वेष॥

नश्वर धन पर दिया गया है
झाँसी का भी पंचम अंश।
जिससे अरि का बढ़ता जाता
इस भू पर है निशि-दिन वंश॥"

राजा भी तिलमिला उठे सुन
व्यंग भरी रानी की बात।
क्रोधानल से धधक उठा वह
नृप का रोम-भूषित गात॥

किन्तु सभी वे शान्त हो गए
छिपा रह गया तन का रोप।
रोम-रोम भी शान्त हो गया
पर न हुआ उनको परितोष ॥

पुन विहँसकर भूपति बोले
"प्रिया! नहीं यह भय का हेतु।
पंचम अंश राज्य का मुझसे
अरि से मैत्री का है सेतु ॥

अभी बहुत है राज्य बचा है।
कर लो यदि सुख से उपभोग।
जीवन की आवश्यकता का
प्रमुदित होकर करो प्रयोग ॥

राज्य-अंश के देने से है
मेरे उर में भी आघात।
किन्तु कुटिल-भवितव्य प्रबल है
यह न किसी के वश की बात ॥"

आगे बात न वह सुन पायी
लगी हृदय में गहरी चोट।
मानव होकर स्वामी भी हैं
लेते कायरता की ओट ॥

फड़क उठे क्षण में रानी के
कमल-बदन के कोमल पात।
उर-सागर में ऊर्मि जगी फिर
इन बातों का सा आघात ॥

“करके रानी क्षमा याचना
कहने लगी हृदय की बात।
जिस हिम के आघातों से था
जला जा रहा उर जलजात॥

प्रभो! आपका किया शत्रु ने
हँसकर जो यह है सम्मान,
सोच रहे हैं इसी मान से
होवेगा अपना उत्थान?

यह तो गुड़ में विष के जैसा
दिया गया घातक सम्मान।
रिपु की नीति काम कर बैठी
अब सहना होगा अपमान॥

गगन हँस रहा, रोती अवनी,
आप हुए कैसे अनजान।
कभी नहीं अरि अनल साथ में
पा सकता तिनका उत्थान॥

नृप की पुनः चेतना जागी
तब कैसे अब हो सब काम?
जिससे बन्धन-कड़ियाँ टूटें,
निज प्रदेश का रहे सुनाम॥”

प्रिय पति से यह सुनकर रानी
कहने लगी विहँस तत्काल।
“फेरें हाथ गरज मूछों पर
फिर माइ के प्यारे लाल॥

— जगे पुन केसरिया बाना,
हय पर दौड़े कुशल सवार।
युद्ध छेड़कर चमचम चमकें
बरछी, भाले, तीर, कटार॥

रनिवासों में रानी जागे
तजकर अपना भोग-विलास।
रंग भवन के कक्ष-कक्ष में
हो हथियारों का ही हास॥

वे भी अपने कोमल कर को
कर लें अब से वज्र समान।
चला सकें वे शूर-वीर सा
बरछी, भाले, तीर, कमान॥

प्रभुवर! निद्रा तज जगने से
हो सकता अब है उत्थान।
सत्य मार्ग पर ही चलने से
होगा वीर देश सम्मान॥"

नवरस में वे डूब गए थे
रहा निशा का उन्हें न ज्ञान।
अन्तरिक्ष की अगणित आँखें
होने लगीं शीघ्र ही म्लान॥

रंग भवन से भूपति निकले
कामशार पट कटि से खोल।
उधर भवन की निपुण सारिका
उठी प्रजापति की जय बोल॥

प्रणय-सरोवर में ऐसे ही
हँसते थे नव रुचिर विलास।
हृदय-मुकुल में सुधा भरी थी
मिटती जाती थी सब प्यास॥

विहँस रहा था कुक्षि प्रान्त में
रानी का भावी उत्थान।
मार्गशीर्ष की लिए कौमुदी
हुई प्रकट हृपद सन्तान॥

दीन-दुखी को मिला भवन से
उत्सव में मनमाना दान।
खान-पान या राग-रंग से
किया गया सबका सम्मान॥

निशा पहनती रही विहँसकर
दिन का सुखदायक परिधान।
हँसता हुआ दिवस सबको था
लगता पल, छण, घड़ी समान॥

अरि जो बैठे थे झाँसी पर
लगा लगाकर वंचक घात।
पहुँचा उनके मर्मस्थल पर
अन्तक सा गहरा आघात॥

पाया यह सन्देश उन्होंने
झाँसी का है जागा त्याग।
उनके हँसते अभिलाषों को
लगी जलाने जी की आग॥

सातवीं हुंकार

प्राची के स्वर्णिम अंचल पर
बालक रवि था खेल रहा।
शान्ति-सुधा में विमल प्रभा वह
विहँस विहँस था घोल रहा॥

तरु-तरु के रंजित मस्तक पर
खग-कुल बैठा बोल रहा।
मधु से सिक्त सघन वन-वन में
मलयवायु था डोल रहा॥

प्रकृति वधू थी हरित-वसन पर
स्वर्णिम चादर ओढ़ रही।
ज्योति गगन-अवनी-तल का थी
कनक-तन्तु से जोड़ रही॥

कमल-कोष में बन्द भृङ्गगण
खुलते ही उड़कर निकले।
धूलि-धूसरित गुनगुन गाते
निज दलों की ओर चले॥

थिरक उठी जल-तल पर लहरें
विहँस पुलिन की ओर चलीं।
भानु रश्मियाँ अर्घ्य-वारि का
सत्वर द्रुतगति बटोर चलीं॥

खेल रहा था नन्हाँ सा शिशु
विमल प्रभा थी मुसकाती।
वातायन से कनक-रश्मि भी
आकर नित थी दुलराती॥

रानी कभी उठाकर शिशु को
कन्धे पर थी बैठाती।
कभी सुलाकर पलने पर वह
चुम्बन ले लेकर गाती॥

चुटकी बजा-बजाकर कहती
"लाल! बड़े हो जाओ तुम।
वीर शिवा, राणा प्रताप सा
कर्मक्षेत्र अपनाओ तुम॥

पार्थ-पुत्र से होकर प्यारे!
नित्य अनीति मिटाओ तुम।
माता का शृङ्गार पुन हे
लाल! प्रसन्न सजाओ तुम॥

बरछी, भाले, तीर, कटारें
फिर ले विहँस जगाओ तुम।
लाल! धरा पर पूर्वकाल सा
गौरव गान सुनाओ तुम॥"

यही गीत गा गाकर रानी
शिशु को पुन उठाती थी।
आँचल से ढँक, दूध पिलाकर
चुम्बन-सहित सुलाती थी॥

कभी शान्त मुद्रा में कहती
गीता इसे पढ़ाऊँगी।
छोटेपन से ही घोड़े पर
चढ़ना इसे सिखाऊँगी॥

बाला गुरु का दिया हुआ यह
मन्त्र इसे बतलाऊँगी।
छोटी - सी तलवार थमाकर
लड़ना इसे सिखाऊँगी॥

समर-बीच अरि की छाती पर
चढ़ना इसे बताऊँगी।
सकट में घिर जाने पर भी
बढ़ना इसे सिखाऊँगी॥

इसे सुनाऊँगी गाथा मैं
कुरुक्षेत्र के वीरों की।
सत्य-स्वत्व के लिए स्वतः
- सिर देनेवाले धीरों की॥

यह भी इसे बता दूँगी मैं
युग सिन्धु तरना होगा।
निज स्वदेश की रक्षा के हित
उर शोणित भरना होगा॥

चढ़ना होगा नभ मस्तक पर
बढ़ना तप्त अँगारों पर।
ज्वाला बन हहराना होगा
लप - लप लप तलवारों पर॥

अरि शोणित से रंजित चूँदरी
देवी को देनी होगी।
परम्परित वीरत्व भाव की
शिक्षा भी लेनी होगी॥"

सदा ललककर हाथ बढ़ाकर
अम्बर को छून बढ़ना।
मन में मौन यती सा कुछ-कुछ
निर्निमेष पढ़ते रहना॥

अनुभावों के नव पल्लव प
चपल भाव से मुसकाना।
स्नेह-सरोवर के जल वक्ष पर
मधुज सदृश नित लहराना॥"

कभी नहीं मन की आकांक्षा
पूर्ण किसी की होती है।
वही विश्व में होता है जो
प्रभु की इच्छा होती है॥

प्रकृति सदा यह सोचा करती
ऋतु बसन्त ही बनी रहे।
सुषमा से मण्डित नव कलिका
मधु सौरभ स सनी रहे॥

सदा डालते रहे द्रुमों पर
घूम घूम पिक मतवाले।
भरे रहें मधु से सुमनों क
नवल रुधिर रंजित प्याले॥

सदा नाचती रहें तितलियाँ
पहने सतरंगी साड़ी।
रहें झूमती मुदित पवन में
फूलों की क्यारी-क्यारी॥

पर वसन्त बीतते धरा पर
झंझावात गरजता है,
नभ से वसुधा के अंचल पर
निशि-दिन अनल बरसता है॥

सिसक पड़ा नभ, काँपी दिशाएँ,
लगी बिलखने महरानी।
तृण से लेकर अचल दृगों में
छलक पड़ा छल-छल पानी॥

हाय! लाल का तीन मास में
शून्य गोद करके जाना।
वरा-दीप पूजा से पहले
झिलमिल करके बुझ जाना॥

कौन साँझ का तारा बनकर
विमल प्रकाश दिखावेगा?
कौन हाथ की लकुटी बनकर
पथ पर मुझे चलावेगा?

तब मैं लाल कहूँगा किसको,
माँ कह कौन पुकारेगा?
अरुणकुमार-सदृश काँधर पर
लेकर कौन उबारेगा?

आठवीं हुंकार

था विश्व कला की जननी का
पावन सुहाग नित भासमान।
जिससे झाँसी के कलित धाम
चित्रित लगते थे कान्तिमान॥

नीलाम्बर का था नव वितान
नीचे सछवि गाती विहाग।
लेकर पिचकारी बाल सूर्य
था खेल रहा हँस रुचिर फाग॥

नव धवल भीत पर चित्रित थे
सीता सहचर अभिराम राम।
थी कुरुक्षेत्र की समर भूमि
प्रमुदित थे रथ पर पार्थ श्याम॥

रवि तनया के शोभित तट पर
व्यापक करील के सघन-कुञ्ज।
जिसमें बहती थी सुधा-धार
पा जिसे भ्रमत भृंग पुञ्ज॥

नव शिशु सम काशी विहँस विहँस
भरती सुरसरि की विमल गोद।
जिसका अनुपम सौन्दर्य देख
नभ निराकार भरता प्रमोद॥

रथ पर राजा दुष्यन्त मुदित
खेलने जा रहे थे शिकार।
तापस बाला थी टहल रही
ऋषि का आश्रम था निर्विकार॥

प्रमुदित हरिणी सहचर समेत
लम्बी छलाँग थी रही मार।
रथ के घोड़ों की गति असीम
थी भरी चित्र में नयाकार॥

कन्धों पर काँवर लिए श्रवण
जा रहे देखने तीर्थराज।
वे मातृ पितृ की विमल भक्ति
का सजा रहे थे अमिट साज॥

इन रङ्ग बिरंगे चित्रों से
चमचमा रही थी नवल भीत।
हैं चित्रकार वे परम धन्य
भर दिया चित्र में रस अतीत॥

क्या ही सुन्दर है विहँस रहा
आश्रम सुमनों का सुखद साथ।
जी में होता जो भर चूमूँ
उस चित्रकार के युगल हाथ॥

यद्यपि चित्रों पर रानी का
कुछ ध्यान अनोखा अड़ा रहा।
पर चिन्ताओं की लपटों का
था ताप हृदय पर चढ़ा रहा॥

मन में रानी थी सोच रही
कैसा सशक्त है विधि विधान।
ये सभी शक्तियाँ आज तलक
हैं बनी विश्व में मूर्तिमान॥

वनवासी, तपसी, राम मौन
शुचिता गीता के श्याम मौन।
शोणित से रंजित कुरुक्षेत्र
वीरों का ले बलिदान मौन॥

फारस ईरान तलक फैला
जिसका सुखदायक-विमल साज,
वह भरत खण्ड होकर हताश
है पड़ा भूमि पर मौन आज॥

मथुरा, वृन्दावन, बरसाना
रस के आगर ब्रज धाम मौन।
यमुना-तट के नव-सघन-कुंज
हैं पूछ रहे क्यों श्याम मौन?

करुणा की शान्त पुकार मौन,
विज्ञान, ज्ञान, तप, ध्यान मौन।
जिसमें भरना है स्वर्ग-तुल्य
उस आशा के अभिमान मौन?

रत्नाकर नभ से पूछ रहा
क्यों मेरे चारों धाम मौन?
क्यों चित्रकूट के राम मौन
गीता का उज्ज्वल ज्ञान मौन?

ले वीर सिकन्दर लौट पड़ा
जिस आर्य भूमि से ज्ञान मौन।
जो कण कण में था गरज रहा
वह वीरोचित अभिमान मौन ॥

है मौन मौन अब सिसक रहा
यह वीर भूमि मेवाड़ आज।
जिसकी छाती पर फैल रहा
है बर्बरता का त्रस्त साज ॥

क्यों सत्यव्रत भारत सपूत
राणा प्रताप का गान मौन ?
क्यों केसरिया बाना धूमिल,
क्यों वीरों का सम्मान मौन ?

जिसने रवि के रथ को रोका
वह सती सावित्री आज मौन।
पति का उज्ज्वल आदर्श मौन,
दाम्पत्य प्रेम का साज मौन ॥

जो निराकार नभ से आकर
साकेत भूमि पर था खेला।
जिसने पथ पथ पर लगा दिया
नव ऋद्धि सिद्धियों का मेला ॥

ये निराकार साकार बने।
फिर निराकार हो गए मौन।
है कर्म ज्ञान में गूँज रहा
अब भक्ति भाव में कौन मौन ?

मँझधार लहर में छोड़ नाव
चिर निद्रा में नृप हुए मौन।
झंझा - झकोर - गर्जन में अब
देखें ढिग आते कौन कौन ॥

आशा का पथ भी छूट चला
पथ में लहराता अन्धकार।
फिर भी नभ की नीली चादर
ओढ़ माता करती दुलार ॥

नृप के रहते अँगरेजों की
थी कभी न गलती रही दाल।
वे आज समझकर निराधार
फैलाते हैं निज कपट-जाल ॥

पर यह न हृदय छिलनेवाला
अरि की कैसी भी हो न चाल।
थरथरा उठेगा सम्मुख अब
जग का भीषण भी महाकाल ॥

जब लिया हुआ यह गोद - पुत्र
डलहौजी का होवा अमान्य।
तब यह कृतघ्नता का बदला
फिर हम ही क्यों होवें वदान्य ?

भारत का यह आदर्श नहीं
ऋषियों का है यह पुण्य धाम।
युग युग से ही सब देशों के
सक्षम धर्म का विधि ललाम ॥

इससे न कभी अरि पा सकता
यह झाँसी का अति विशद राज।
इसके पद पर झुक जायेंगे
निश्चय रिपु-दल के शीश-साज॥

पद्मिनी गगन से कहती है
आयेगा जौहर से विहान।
पति के तन के ही साथ साथ
जलकर मरना ही है महान॥

मैं तो कहती हूँ उसने ही
दिखलाया अबला का स्वरूप।
क्या कर में ले तलवार नहीं
बन सकती थी ज्वाला स्वरूप?

अति कायरता का पाठ हमें
है पढ़ा रही वह दिव्य मूर्ति।
यदि अनायास मिल जाय कहीं
स्वीकार्य नहीं ऐसा सुकीर्ति॥

मुझको करता है सावधान
देवलदेवी का शुचि सुहाग।
आदर्श चमाचम दिखलाता
है रूपकुमारी का विराग॥

अव्यक्त रूप में दिखलाती
मुण्डों से भूतल पाट-पाट।
तलवार नचाता है वीरा
वीरों की ग्रीवा काट-काट॥

कहती है कर्णवती प्रतिक्षण
कर की कटार को रोक रोक।
कुन्तों से अपनी रक्षा कर
अरि के सीने में भोंक-भोंक ॥

ताराबाई की अमल ज्योति
हर रही मार्ग का अन्धकार।
कह रही इसी पथ पर चलकर
माता का होगा सिंगार ॥

अतएव दुर्ग की सीमा को
करती है दुर्गावती प्रखर।
जा गरज गरजकर बता रही
है यह शरीर केवल नश्वर ॥

हाड़ारानी का हाड़ हाड़
अपना करता निज शीश काट।
चूड़ावत का है खोल रहा
नर ज्ञान मोह को काट-छाँट ॥

है अमर लोक से सारन्धा
करती है मुझको सावधान।
अरि को मूली सम काट-काट
गाओ भूतल पर विजयगान ॥

नभ की छाती पर चमक रहे
हैं ललनाओं के नव विधान।
इस पथ पर ही चलने से
जागेगा लज्जा का निदान ॥

यह ज्ञान प्राप्त कर ले तुरन्त
पौरुष है कितना अभी शेष।
जिसके बल पर चिर निद्रा से
जग सकता है यह वीर देश ॥

रिपु को न गन्ध कुछ लग पावे
है सकट का यह त्तण निदान।
इस मिष से निर्जीवों में भी
मैं शुभ्र डालूँगी नई जान ॥

रानी ने सोचा करना है
दामोदर का यज्ञोपवीत।
फिर कभी नहीं मिल सकता है
इससे बढ़कर अवसर पुनीत ॥

इसलिए निमन्त्रण ले लेकर
सब ठौर ठौर पर गए दूत।
जिसके आशय को समझ समझ
हो गए मगन भारत-सपूत ॥

नवी हुंकार

पावस की सरस सुवेला थी
बह रहा पवन था सर, सर, सर।
गिरिवर की पुलकित छाती से
निर्झर बहता था झर, झर झर।

झिलमिल झीना बूँदें नभ से
अवनी पर झरती थी झर, झर।
लोनी लतिका लावण्यमयी
लहराकर मन लती थी हर॥

मन्दिर के घण्टों के रव से
दिग् काँप रही थी थर, थर थर।
नित अन्तरिक्ष में विमल केतु
अविरल उड़ता था फर, फर, फर॥

झुक उमड़ घुमड़ घनघोर घटा
घड़घड़ा रही थी घड़, घड़, घड़।
छण सघन-घटा को चीर तड़ित्
तड़तड़ा रही थी तड़, तड़, तड़॥

थी महामहीधर के उर में
प्रतिपल धड़कन होती धड़, धड़।
अपनी तल की भी नीरवता
फड़फड़ा रही थी फड़ फड़, फड़॥

या शिला खण्ड पर मोर मगन
नभ ओर देखकर नाच रहा।
थन के पथरीले वन पथ पर
था भरता हरिण कुलाँच रहा॥

सर सरिता का पुलकित मानस
हर्षित होकर था डोल रहा।
नव आम्र मजरी में बैठा
पिक कुहू कुहू था बोल रहा॥

रक्तिम किसलय की रसना से
तरुवर शीतल जल पीते थे।
जल जन्तु जलाशय में सुख से
जल क्रीड़ा करते जीते थे॥

यह दृश्य देखती थी रानी
कर रहा पर्व की तैयारी।
झाँसी के कण कण में प्रतिपल
था खेल रही सुषमा न्यारी॥

जलधर क्षण भर रुककर गग से
कुछ कहते थे सन्देश नया।
फिर हर्षित हो बढते आगे
लेकर उसका आदेश नया॥

आमन्त्रित अतिथि सभी आए
सज राजे महराजे आए।
यज्ञोपवीत के अवसर पर
सरदार ठाट साजे आए॥

केवल निजाम ही ऐसा था
जो इस अवसर पर दूर रहा।
मायामय भोग विलासों में
पाकर मदिरा में चूर रहा॥

उसको क्या चिन्ता थी रिपु के
उन द्वेष भरी हुंकारों की।
पशुवत् उनके व्यवहारों की,
अन्यायी की फुफकारों की॥

नव अरुण कपोलों में भूला
था अति प्रमत्त पागल निजाम।
होकर नितान्त वासना मत्त
वह भूल गया था काम धाम॥

शुभ लग्न बीच दामोदर का
हो गया ननऊ रच रचकर।
समुचित सबका सत्कार हुआ,
बैठे सब राने सज सजकर॥

यज्ञोपवीत का उत्सव तो
केवल अति व्याज बहाना था।
अरि की आँखों में धूल झोंक
भारत को पुन जगाना था॥

बस एक ध्वज के नीचे मिल
सुध अपनी याद सुनानी थी।
कितना पौरुष है अभी शेष
इसकी ही याद लगानी थी॥

रिपु-दल कड़ियों को तोड़ तोड़
माता को मुक्त कराना था।
अपना प्रसिद्ध वह गौरव ध्वज
फिर से जग पर फहराना था॥

निज धर्म कर्म की रक्षा का
स्वर अति स्वतन्त्र भड़काना था।
आराध्य भवानी का रिपु के
मुण्डों से मान बढ़ाना था॥

उर उर के छिपे विचारों को
खुल कर सब आज सुनाना था।
बस एक पन्थ पर चल चलकर
स्वातन्त्र्य गीत ही गाना था॥

रानी धीरे ले धीर भाव
आ राज सभा में खड़ी हुई।
साकार भवानी नभ से आ
मानो भूतल पर बढ़ी हुई॥

आँखों से चिनगारी चमकी
वाणी में भभकी महाज्वाल।
जन जन के उर में कसक उठा
जीवन अर्पण का मधुर साल॥

बोली रानी—'हे वीरों! अब
यह समय नहीं है सोने का।
है समय हृदय के शोणित से
जननी के पद को धोने का॥

अब भीष्म-प्रतिज्ञा के समान
प्रणकत्ता ही है होन का।
दुःशासन अरि का हृदय चीर
द्रौपदी केश हैं धोने का॥

निर्मम-रिपु गण को काट काट
शस्त्रास्त्र बीच है जीने का।
अरिपिंजर कुम्भज-सम गण्डुलि पर
हँस समर सिन्धु है पीन का॥

यदि अरि-दल बने सघन वन तो
दावानल बन जाने का है।
जयकेतु हिमालय के सिर पर
हँस-हँसकर फहराने का है।

अम्बर में मँडराने का है,
भूतल पर लहराने का है।
नव स्वतन्त्रता के मन्दिर के
घण्टों को घहराने का है॥

पर्वत को थर्राने का है।
कण कण को कम्पाने का है।
इस समर-बीच हुंकारों से
अरि दिग्गज दहलाने का है॥

नद नदी, कूप, सर, वापी को
शोणित से लहराने का है।
नभ की नीली चादर को भी
भूतल पर फहराने का है॥

यह समय नहीं रनिवासों में
काकली बोल सुनने का है ॥
अब स्वतन्त्रता का समर बीच
परिधान विहँस बुनने का है ॥

अब समय आ गया है रिपु को
समर का पाठ पढ़ाने का।
माता के मन्दिर में हँसकर
अब प्राण प्रसून चढ़ाने का ॥

भूले न कभी यह वीर वेष
वीरों में भरी जवानी है।
कण कण में गूँज रही प्रतिपल
राणा की गाथा मानी है ॥

है अरावली गिरि खड़ा अभी
ऐसा पावन है धाम कहाँ?
चौहत्तर मन उपवीतों का
करता है जो सम्मान यहाँ ॥

सुनकर ओजस्वी वीर-शब्द
सारा समाज समसमा उठा।
दीवान जवाहरसिंह उठे
कटि का कृपाण झनझना उठा ॥

कर नमस्कार रणचण्डी को
फिर वीर भाव से वे बोले।
क्षण शान्ति-सुधा के प्याले में
वीरत्व-तत्व के रस घोले ॥

हे देवि ! न भय है मुझको अब
रिपु-दल की विकट कटारों का।
मुझको है भवन जलाना अब
अरि-दल के अत्याचारों का॥

मैं तरस रहा हूँ उस दिन को
जब भरत-खण्ड पावन होगा।
अरि दल के उर के शोणित से
भारत पर फिर सावन होगा॥

माता के धन से पले हुए
नश्वर तन का अर्पण होगा।
मानस के गम लहू से जब
पितरों का नव तर्पण होगा॥

रघुनाथसिंह ने भी तत्क्षण
पद रज ले दिव्य भवानी के।
रख दिये चमकते चन्द्रहास
सम्मुख झाँसी की रानी के॥

बोले "हे माता ! इनको अब
गंगा-जल से नहलाना है।
ले आशीर्वाद भवानी का
अरि-शोणित से लहराना है॥"

रानी ने कहा 'सभी सुन्दर।
सत्वर तुम गंगा जल लाओ।
इन नागिन-सी तलवारों को
पढ़ वीर मंत्र अब नहलाओ॥"

पर उन वीरों का आग्रह था
माता निज कर से नहलावें।
नहला नहला तलवारों को
स्वातन्त्र्य मंत्र भी बतलावें ॥

रानी ने लेकर पावन जल
तपती असि को क्षण नहलाया।
उन भरतखण्ड के वीरों को
जय मंत्र विहँस कर बतलाया ॥

उस जय निनाद से एक साथ
गढ़ का कण-कण दमदमा उठा।
उन बिजली सी तलवारों से
क्षण राजभवन चमचमा उठा ॥

पर राजे रजवाड़े जो थे
बैठे रह गये न बोल सके।
उन वीर मंत्र के साथ तनिक
वे जीभ न अपनी खोल सके ॥

जागी न स्फूर्ति उनके मन में
वे मूर्तिमान ही खड़े रहे।
अपने अपने नश्वर पद की
चिन्ता में थे वे पड़े रहे ॥

थी विहँस प्रतीची खोल रही
अपने भवनों का स्वर्ण द्वार।
जिसमें बैठी सन्ध्या बाला
भरती कबरी में रत्न सार ॥

कर प्राण-प्रिया का आलिंगन
दिन-नायक भी हो गए मौन।
हो गई विसर्जित राज-सभा
गढ़ साथ-साथ हो गया मौन॥

नभ का सब साज विसर्जित था
उड़ चले विहग निज नीड़-ओर।
तिमिराचल में सो गए सभी
थे गिरि गह्वर, घन, भूमि-छोर॥

दसवीं हुंकार

बीबागढ़ में अंगरेजों ने
अनाचार यह किया महान।
मृत गोरों का बदला लेने
घृणित रूप से किया विधान॥

पकड़ पकड़कर श्रेष्ठ द्विजों को
चटवाया मृत शोणित लाल।
स्वच्छ कराकर उनसे ही फिर
दिया अग्नि में उनको डाल।

अभी कह रहा अजनाले का
सुन्दर करुणामय आख्यान।
जिसमें अरि ने बन्द किया था
छाछठ बच्चों को नादान॥

वे हिन्दू-कुल-दीप उजाले,
माताओं के भोले लाल।
बिना वायु के तड़प-तड़पकर
निशि में त्याग गये तत्काल॥

देख शत्रुओं का बच्चों पर
ऐसा भीषण अत्याचार।
मातृ भूमि रोयी श्यामा भर
हा सुत! कहकर हृदय विदार॥

भठी काल कोठरी का ये
हमें सिखाते है इतिहास।
किन्तु उन्होंने छिपा लिया क्यों
अजनाले का क्रूर विलास?

अभी फर्रुखाबाद ले रहा
उमी नवाबी का है नाम।
जहाँ रो पड़ा फूट फूटकर
अरि सम्मुख मजहब इस्लाम॥

पकड़ लिया रिपु ने नवाब को
प्राण दण्ड का किया विधान।
तन पर मली वराह वसा फिर
ली फाँसी से उनकी जान॥

अवध बिलखकर दिखा रहा है
जली हुई तन पर की आग।
जहाँ शत्रु ने माँ बहनों की
लज्जा से खेला था फाग॥

लाज न बचने के अवसर पर
देख शत्रु का अत्याचार।
बेगम हजरतमहल शस्त्र ले
हुई बाजि पर शीघ्र सवार॥

विप्लव दल के आगे आगे
लेकर नागिन सी तलवार।
अंगरेजों का शीश काटती
गरज रही थी बारम्बार॥

यद्यपि बहुत न यह टिक पायी
किन्तु दिखाया जीवन सार।
निज गौरव के पावन पथ पर
रक्खा पावन शीश उतार॥

बर्मा के जंगल में अब भी
गूँज रही है यह आवाज।
हे मानव! तुम भूल न जाना
यहीं छिपा है तेरा ताज॥

यहीं कहीं पर छिपा हुआ है
तेरा वह अन्तिम सम्राट्।
फूँक दिया था जिसने जन हित
अपना नश्वर वैभव ठाट॥

इसी भूमि की छाती पर है
शोणित से रंजित रंगून।
सुनकर जिसकी हुंकारों को
गरम हो रहा अब भी खून॥

स्वतन्त्रता के वीर पुत्र का
यहीं सो रहा शान्त मजार।
खता रहा जो अंगरेजों का
गरज गरज प्रत्युत्तर व्यवहार॥

बन्दी हुए शत्रु के दल से
मातृ भूमि के प्यारे लाल।
जो स्वतन्त्रता के नारे पर
हँस हँसकर देते थे बाल॥

अँगरेजों ने जान बूझकर
किया दुष्टता कार्य महान।
अन्त समय में निज गोत्री का
उन्हें बनाया तीक्ष्ण निशान॥

पूज्य पिता के सम्मुख चारों
पुत्रों का ला रक्खा शीश।
और कहा 'लो शाह' तुम्हारी
कुर्बानी की है यह फीस।"

सुनकर यह सन्देश शाह का
बदन हुआ दिनकर-सम लाल।
पुन हँस पड़े देख सुतों का
सिर पावन शोणित से लाल॥

गरज पड़ा अस्सी वत्सर का
अस्थि चर्ममय वह फौलाद।
"इसी तरह वालिद के सन्मुख
आती तैमूरी औलाद॥"

जर्जर काया शान्त हो गई
नभ ने दुहराया वरदान।
इससे बढ़कर कौन करेगा
अपने गौरव का सम्मान?

सुनती थी जब रानी अरि के
किए हुए ये अत्याचार।
और देखती थी आँखों से
अँगरेजों का यह व्यवहार॥

जाति - धर्म पर ऐसा सकट,
माँ - बहनों का हाहाकार।
जलते हुए घरों के भीतर
बूढ़े - बच्चों का चीत्कार॥

जलती हुई लाज की होली
जलता मिटता अपना देश।
अपने बच्चों के शोणित से
रँगा हुआ माता का वेष॥

राजाओं का राज्य हड़पकर
कर लेना निज शक्ति-अधीन।
जिनका लक्ष्य यही अवनी पर
रहे न कोई घर स्वाधीन॥

रहे न सिर पर अब से चोटी,
रहे न गीता का भी ध्यान।
रहे न मस्तक पर चन्दन का
चमचम करता रुचिर - निशान॥

रहे न हिन्दू - मुसलिमपन का
जन जन में आधार विचार।
रहे न अब से हृदय - हृदय में
भाई - भाई का व्यवहार॥

भूल जायँ सब मन्त्र ऋचाएँ,
भूले कलमा और कुरान।
भूले सारव्य योग का पढ़ना,
भूले पोथी और पुरान॥

रहे न नारी को स्वामी का
पति को नारी का विश्वास।
जगी रहे जननी को सुत की,
सुत को मात रक्त की प्यास॥

भूलें हिन्दू जप, तप, व्रत को,
मुस्लिम रोजा और नमाज।
मसजिद में सूखे पैगम्बर,
मन्दिर में रोएँ सुरराज॥

तब वह कहती थी हाथों में
लेकर नागिन सी तलवार।
अरि दल का उर चीर-चीरकर
हरना है भू का यह भार॥

सखियों! सावधान हो जाओ
करना है माँ का सम्मान।
अरि शोणित से धरणी धोकर
करना है मुण्डों का दान॥

ग्यारहवीं हुंकार

पावस की हरियाली पर
नभ भर भर बरस रहा था।
डाली पर प्यासा चातक
पानी को तरस रहा था॥

बैठी थीं पंख फुलाकर
तरु पर नव विहगावलियाँ।
लतिका कोमल दल-कर से
रच रही चाँन्द्र की लड़ियाँ॥

फल फूलों के भूषण से
सज्जित थी वन की रानी।
इठलाती थी अपनी पर
नदियों की नई जवानी॥

उनको न ज्ञात था अपनी
मर्यादा के कूलों का।
था तुहिन-बिन्दु से आवृत
परिधान हरित-फूलों का॥

गरमी से व्याकुल तरु-तरु
किसलय की जीभ निकाले।
पी रहे मगन जल, तन पर
थे हरित वसन ये डाले॥

करती थीं खड़ी जुगाली
गायें खुर पूछ समेटे।
बैठे थे काँप रहे थे
चरवाहे बाँह लपेटे॥

तन झाड़ झाड़कर बछड़े
माँ से सटते जाते थे।
अवनी के हरित वसन पर
तरुवर भी लहराते थे॥

बैठे किसान गाते थे
तिनकों की झोपड़ियों में।
गदला जल भरा हुआ था
पशुओं की खोपड़ियों में॥

आते ग्रामीण मगन हो
बोझे सिर पर ले लेकर।
थे खड़े रोंगटे फूले
जल-सीकर से तर होकर॥

जल पूरित लहराती था
खेतों की क्यारी क्यारी।
भू सस्य[1] श्यामला तन पर
ओढ़े थी सुन्दर साड़ी॥

रानी के तन पर भूषित
सुन्दर सित-पाटाम्बर था।
उसके ऊपर से सादा
नव, धवल रुचिर, अम्बर था॥

बैठीं थीं आसन मारे
मन में नव भाव जगा था।
जिनकी उलझन-सुलझन में
घण्टों से ध्यान लगा था॥

वे सोच रही थी मन में
पहले जन कष्ट हरूँगी।
उस डाकू सागर को मैं
जीवित ही अब पकड़ूँगी॥

यदि लेकर बटमारों को
चाहेगा मुझसे अड़ना।
तो यहाँ पड़ेगा हमको
सखियों को लेकर लड़ना॥

तो प्रथम इन्हें बतला दूँ
जो आगे अब है करना।
बरवासागर में डाकू
सागर से है अब लड़ना॥

थीं सुन्दर सुन्दर सखियाँ
बैठीं अवनी अंचल पर।
लिख रहा पवन था भावी
आदेश विटप दल-दल पर॥

बोली रानी—हे सखियों!
अब है करवाल उठाना।
बरवा सागर में चलकर
है असि को रक्त पिलाना॥

सखियाँ सुनकर रानी का
आदेश विनत हो बोली—
"है मौत भला किस रिपु के
सिर पर यह सहसा डोली ?"

रानी क्षण विहँस उठी सुन
सखियों की ऐसी वाणी।
वे लगीं बताने रिपु को
जिससे कम्पित थे प्राणी॥

है सागर सिंह यहाँ पर
जो डाला करता डाका
यरवा सागर सा कोमल
है कँपा दिया उर माँ का॥

अब चलकर उसको क्षण में
है रण का पाठ पढाना।
बटमारों की हत्या कर
जीते जी उसको लाना॥

इसलिये न हो अब देरी
यह समय न है खोने का।
जन हित अरि के शोणित से
है हाथ त्वरित धोने का॥

'तो सुन्दर! शीघ्र कहो तुम
रघुनाथ सिंह से जाकर।
आयें झाँसी में तत्क्षण
सेना को पूर्ण सजाकर॥

चल दी उस ओर जहाँ पर
वह रहता था सेनानी।
प्रात की पूजा करने
बैठी आसन पर रानी॥

शोभित ऊषा की लाली
प्राची में विहँस रही थी।
सुमनों की डाली डाली
फूलों से मँहक रही थी॥

शिशु हंस किरण माला से
नत-कुंकुम लेप लगाता।
गिरिराज-धवल मस्तक पर
था स्वर्ण मुकुट मुसकाता॥

सुषमा बैठी कोई से
पंकज पर आ जाने को।
थी देख रही पथ स्वस्तिक
दधि स्वर्ण कलश आने को॥

त्यों ही माया ने रक्खा
सोने का कलश लाकर।
चल दी निज रम्य भवन को
दधि-सर में मुदित नहाकर॥

पथ मंगलमय होते ही
संसृति के प्राणी जागे।
घर से निकले चरवाहे
अपनी-अपनी गायें ले॥

किरणों ने भाड़ दे दे
नभ - घन को दूर हटाया।
अपनी सुषमा मणियों को
अम्बर में मुदित बिछाया॥

क्षण में निकले झाँसी से
हथियार लिये सेनानी।
सखियाँ पीछे पीछे थीं
आगे झाँसी की रानी॥

घोड़े हिनला - हिननाकर
निज कौशल दिखलाते थे।
रवि की किरणों में कुन्तल
वीरों के लहराते थे॥

पढ़ती जाती थी सखियाँ
क्षण प्रलय मचानेवाली।
सम्मुख फुफकार रही थी
बेतवा नदी मतवाली॥

कहती थी इठलाती हो
लेकर यह नई जवानी।
साहस हो तो अब रोको
मेरी यह गति मस्तानी॥

रुक गए पुलिन पर घोड़े
मीलों तक फैला जल था।
लहराकर रही थी तटिनी
पहला न दिखाई थल था॥

उत्ताल तरंगें ऊपर
उठ उठकर गरज रही थीं।
कोई न करे दुस्साहस
मानो वे बरज रही थीं॥

तट पर के महाविटप भी
सोते जाते थे जल पर।
हो रहा प्रलय-नर्तन था
उस वनस्थली के तल पर॥

पवि सम पाषाण कगारा
यों टूट टूट गिरता था।
उनका वह भीषण क्रन्दन
उर उर में भय भरता था।

बहता था प्रखर पवन भी
पत्थर सा उर दहलाकर।
आगे बढ़ता जाता था
अवनी पर विटप सुलाकर॥

इसलिये न तिर सकती थी
तरणी भी तटिनी तन पर॥
बैठे थ नाविक चुप हो
सरिता के मलिन पुलिन पर॥

उस पार बनाली ओढ़े
था नूतन हरित - दुशाला।
थी गिरि-मस्तक पर शोभित
पुष्पों की सुन्दर - माला॥

जिसकी शीतल छाया में
सोए थे जलधर आकर।
किसनों को उड़ा रहा था
मारुत उत्पात मचाकर॥

रानी ने मुड़कर देखा
सैनिक चुपचाप खड़े थे।
जीवन के नश्वर तन की
माया में विकल पड़े थे॥

वह पुनः विहँसकर बोली
"क्या कर सकती है सरिता?
सखियों! तरणी बनकर है
तिरना शोणित की सरिता॥

इसलिये शीघ्र ही चीरो
बेतवा नदी की छाती।
हम सबको अभी बचाना
है माँ की शुचिता थाती॥"

यह कहकर रानी कूदी
तटिनी के जल भ्रामण में
फिर कूद पड़े सब सैनिक
रव गूँज उठा कण-कण में॥

घोड़ों का तन डूबा था
केवल ऊपर मुख तन था।
जिनके सम्मुख दिखलाता
हर क्षण जल आवर्तन था॥

पीठों पर सेनानी थे
नीचे अथाह पानी था।
सबसे आगे रानी का
घोड़ा वह तूफानी था॥

सबको बतलाता जाता
सरिता का मार्ग सुगम था।
लहरों के वक्षस्थल पर
पानी न कहीं भी कम था॥

रानी भी गरज गरजकर
नव साहस बढ़ा रही थी॥
नागिन सी असि धारा पर
नव पानी चढ़ा रही थी।

साथियों! अब पार हुए हो,
सम्मुख दिखलाता थल है।
अब पार हो गए हो तुम
थोड़ा ही गहरा जल है॥

डूबे सवार थे जल में
सिर ही केवल ऊपर था।
वह भी जल के सीकर की
बूँदों से पूरा तर था॥

सबसे पहले राना का
घोड़ा पहुँचा हिननाकर।
चढ़ गया उछलकर तट पर
माता को शीश नवाकर॥

रानी ने कहा गरजकर
देखो है यही किनारा।
आओ अब दूर नहीं है
जीवन का सुखद सहारा॥

क्षण में ही सैनिक सखियाँ
हँस पार हो गइ सरिता।
सिर के ऊपर मुसकाता
जीवनदायक था सविता॥

स्वातन्त्र्य पथ के राही
भींगे पट सब फैलाकर।
तृण दल की मृदु शय्या पर
बैठे छाया में आकर॥

करके आराम सभी ने
फिर सैनिक वेष बनाया।
चढ़ गए उछलकर हय पर
माता को शीश नवाया॥

पलकों के गिरते गिरते
वे लगे गगन में उड़ने।
निज टापों के वारों से
वे लगे पवन से लड़ने॥

बरवा सागर क गढ़ का
था केतु गगन में उड़ता।
जिसकी सुषमा पर मोहित
जलधर क्षण भर था रुकता॥

झुकता न कभी भी नभ में
यह केतु महा अभिमानी।
अम्बर में लहराता लख
अति क्षुब्ध हो गई रानी॥

म्यानों से निकल तत्क्षण
चमचम करती तलवारें।
गढ़ की छाती पर गरजीं
झाँसी का निकट कटारें॥

थरथरा उठी यह अवनी
हिल गया दुर्ग मतवाला।
तलवारों के तापों से
किरणों में भभकी ज्वाला॥

कर जाड़े पुर जन बोले
यह सागरसिंह नहीं है।
भय से काँपते हृदय से
आती कुछ बात सही है॥

रानी बोली 'तब उसको
अब ठीक-ठीक बतलाओ।
यदि युद्ध बल रखता हो तो
सम्मुख अब खड्ग उठाओ॥

गिर पड़े दुर्ग के प्राणी
रानी के पद पर क्षण में।
गूँजा आदेश गरजता
गढ़ के कम्पित कण कण में॥

मिल गया भेद डाकू का
क्षण में ही उस रानी को।
कह उठी गरजकर 'देखो
पकड़ो उस अभिमानी को॥

इस समय लुटेरों के सँग
रिसली वन में रहता है।
उस गहन विपिन में छिपकर
सबका वैभव हरता है॥

तो छिपे छिपे ही चलकर
घेरो उस तममय वन को।
चलदल सम कम्पित कर दो
उस अभिमानी के मन को॥

देखो इस विकट दशा में
है सँभल-सँभलकर चलना।
पर ध्यान रहे इतना ही
जीते जी उसे पकड़ना॥

क्षण में घेरा फिर सब ने
उस अटवी को सेनानी।
कुछ लगे छानने वन को
अथ छिपे छिपे सिरदानी॥

इतने में पड़ा दिखाई
दीपक का विमल उजाला।
जिसको झुरमुट पन लटकी
थी रविव-लता की माला॥

छूटी गोली सैनिक की
क्षण कॉप उठा वह कानन।
इतने में लगी बरसने
झाड़ी पर आग दनादन॥

डाकू भी टूट पड़े सब
ले लेकर अपने भाले।
थोड़े थे टिक न सके वे
पड़ गए जान के लाले॥

सो गए अवनि पर क्षण में
तलवारों के वारों से।
तर तर शोणित बहता था
करवालों की धारों से॥

अब सागरसिंह अकेला
रह गया युद्ध में लड़ता।
मन ही मन जय आशा का
यह मंत्र सतत था पढ़ता॥

फिर प्राण बचाकर भागा
उस ओर जिधर थी रानी।
सखियों की तलवारों का
चमचम करता था पानी॥

रानी ने कहा गरजकर
सखियों। अब शस्त्र चलाओ।
जीते जी इसको पकड़ो
पीछे निज बाजि बढ़ाओ॥

इतना कहकर रानी ने
घोड़े को एड़ लगाई।
कुछ ही दूरी पर डाकू
वह सागर पड़ा दिखाई॥

अब देर न थी रानी को
सागर को पा जाने में।
उसका हय निज घोड़े के
घेरे में था लाने को॥

तब तक रानी के ऊपर
उसने तलवार चलाई।
अपनी असि से रानी ने
अरि असि दो खण्ड बनाई॥

बल भर प्रयत्न करने पर
था नहीं छुड़ा वह पाया।
नभ के सिर पर रानी का
नव विजय केतु लहराया॥

झट सागर के हाथों में
पड़ गईं शीघ्र हथकड़ियाँ।
उसके रक्तिम नयनों से
छूटी आँसू की लड़ियाँ॥

रानी बोली "अभिमानी!
यह समय नहीं रोने का।
निज बन्धु जनों को दुख दे
यह समय न है खोने का॥

अब बोल बता निज इच्छा
क्या मन है अब करने का ?
लो शपथ इसी क्षण सम्मुख
निज देश कष्ट हरने का ॥"

हो गया मुग्ध सागर भी
माता को शीश नवाया।
लेकर कर में गंगा जल
प्रण सबको शीघ्र सुनाया॥

"माँ ! जब तक गर्म लहू है
जन जन का भार हरूँगा।
नश्वर तन की आहुति से
माँ का सम्मान करूँगा॥"

तब यही वीर सागर भी
हो गया देश अभिमानी।
रानी का सैनिक बनकर
रक्खा स्वदेश का पानी॥

———

बारहवीं हुंकार

निशि भर अवनी पर अम्बर
बरसा हिम-जाल रहा था।
असहाय काँपता मारुत
दल-दल पर भटक रहा था॥

हिम-शिला सदृश धरणी का
शीतल श्यामल अंचल था।
सिर नीचे किए व्यथा से
सुमनों का कोमल दल था॥

नीरवता के शासन में
निष्ठुर सोया जन रव था।
भूतल पर टहल रहा था
हिम-सहचर तम-दानव था॥

कुछ कोल-भील के बच्चे
नंगे ही नाच रहे थे।
थे ठुनक-ठुनककर माँ से
खान को माँग रहे थे।

कुछ की कटि में चिथड़ों की
लिपटी केवल धोती थी।
जिनके मैले आनन को
माता जल से धोती थी॥

कहती थी रात अभी है
सो जा मुन्ना! आँचल में।
आँखें थी दोनों डूबी
वात्सल्य-जलधि के जल ॥

माँ के तन पर भी मैला
सौ छिद्रों का कपड़ा था।
वह तन वर्फीले तल पर
मानो निश्चिन्त पड़ा था ॥

झोपड़ियों में भूतल पर
छाती से पैर सटाए,
बैठे थे दीन कृषक जन
खेतों पर ध्यान लगाए ॥

उनकी बाहों के भीतर
जलती थी पावक-ज्वाला।
अब वह भी पहन चली थी
नव शिशिर कणों की माला ॥

हिमकर का श्वेत बदन भी
कुछ कुछ धूमिल लगता था।
ले अंगराग ओले का
मारुत तन पर मलता था।

निशिपति भी लिए हुये थे
कन्धे पर श्वेत दुशाला।
अधपके हरे खेतों पर
पड़ता था हँसता पाला ॥

थी भाप निकलती ऊपर,
कम्पन था जल के तल में।
कुछ-कुछ गरमी थी अब भी
भूतल के गहरे जल में॥

वनचर अपने गह्वर में
शिशु को लेकर सोता था।
तारों की आँखों से नभ
व्याकुल होकर रोता था॥

ऊषा शिशु रवि को लेकर
साई थी स्वर्ण-महल में।
भौंरे सोए थे सुख से
फूलों के मुकुलित दल में॥

लहरें सोई थीं नीरव
पनघट के गर्म हृदय में।
सौरभ सोया था सुख से
पुष्पों के मधुर हृदय में॥

प्राची के सुन्दर सदन में
सोया था शान्त सवेरा।
तरु-पाँतों की झुरमुट में
नीरव था विहग-बसेरा॥

लतिका लिपटी थी तरु से
बाँहों से बाँह मिलाकर।
सोई किसलय पर कलियाँ
दल-अंचल शिथिल हिलाकर॥

ऐसी भयशीला निशि में
जब गिरि भी काँप रहे थे॥
निर्झर गह्वर सर्दी से
व्याकुल हो हाँप रहे थे॥

रानी सखियों को लेकर
चपल घोड़े पर चढ़कर,
तोपों को सजवाती था
झाँसी के उन्नत गढ़ पर॥

पढ़ती थी मंत्र सतत वह,
नारी-सेना जगती थी।
बन्दूकों के गर्जन से
अवनी थर थर कँपती थी॥

फाटक फाटक पर तोपें
विधिवत् रक्खी जाती थीं।
परकोटों के मस्तक पर
वे हँसती मुसकाती थीं॥

कहती थीं वीरों! कुछ भी
चिन्ता न करो मरने की।
रह जाय न तिल भर धरणी
अरि को गढ़ में चढ़ने की॥

मिट जायँ शलभ-सम गढ़ के
बाहर अरि के सेनानी।
फिर जाय वीर मतवालों!
रिपु की आशा पर पानी।

निज तोपों की ज्वाला में
अरि की तोपें जल जायें।
भाँसी का अचल वीरो !
अरि मुण्डों से भर जायें॥

तलवारों के वारों से
सर में शोणित लहराये।
स्वातन्त्र्य ध्वजा अम्बर में
अरि प्राणों से फहराये॥

फाटक फाटक के रक्षक
वीरो ! वरदान यही है।
इससे बढ़कर अब पावन
इस जग में स्थान नहीं है॥

यह महायज्ञ है जिसमें
अरि का आहुति देनी है।
यह स्वतन्त्रता की तरणी
अरि शोणित पर खेनी है॥

वीरों ! जी जान लगाकर
बारूद पहाड़ बना दो।
विषधर गोले बरसाकर
रिपु हाड़-हाड़ थरा दो॥

क्षेन बान से अरि की
नव-ज्वाला भभक उठी है।
अब दूर न है सिरदाना।
शिर-माला चमक उठी है॥

इसलिये शीघ्र ही गढ़ की
अब नाकेबन्दी कर लो।
कर में अति पानी लेकर
माँ का अभिवादन कर लो॥

पूरी सामग्री रख लो
अब अधिक विलम्ब नहीं है।
रजवाड़ों की सेना का
कोई अवलम्ब नहीं है॥

हिन्दू कुल हस शिवा ने
जनता की सेना लेकर,
मन्दिर का मान किया था
अरि दल की आहुति देकर॥

छोटे छोटे अश्वों पर
झोपड़ियों से बल लेकर।
माता का मान किया था
जन जन की तरणी लेकर॥

उस समय यहाँ के नृप तो
अरि को ही माथ नवाकर,
बैठे थे माँ बहनों से
रिपु का दरबार सजाकर॥

कुछ तो आपस में लड़कर
शोणित की नदी बहाकर,
हँस खेल रहे थे होली
भाई का भवन जलाकर।

राणा प्रताप की गाथा
कण-कण में गूँज रही है।
जन जन से प्रश्न सतत वह
हँस हँसकर पूछ रही है॥

बोलो इस वनवासी का
किस नृप ने साथ दिया था?
तन से मन से या धन से
किसने सम्मान किया था?

उनकी सेना में केवल
थे कोल-भील मतवाले।
झोपड़ियों में घासों की
रोटी पर पलनेवाले॥

निर्झर के शीतल-जल को
पी पीकर बढ़नेवाले।
अम्बर के ही अम्बर से
लज्जा को ढकनेवाले॥

इसलिए हमें भी है अब
जनता को गले लगाना।
झोपड़ियों के ही बल पर
है राष्ट्र का विपुल बनाना॥

है भारत के नव गौरव।
मेरा सन्देश यही है।
कण से लेकर भूधर को
मेरा आदर्श यही है॥

यह धरणी है वीरों की,
वीरों की यह जननी है।
इसलिए आज तन-मन से
इसकी रक्षा करनी है॥

हम सब के नश्वर तन में
माता का प्यार छिपा है।
हम सब के गर्म लहू में
माँ का सत्कार छिपा है।

इस प्रखर शीत-पाले में
तलवारों की ज्वाला से।
शिव का अभिवादन कर लो
अरि-मुण्डों की माला से॥

सुन रानी का जयघोष प्रबल
अम्बर तमतमा उठा था।
प्राची का लोहित आनन भी
क्षण में दमदमा उठा था॥

तेरहवीं हुंकार

ऋतुपति के शर की मारों से
घायल होकर जाड़ा भागा।
मिल सकी न उसको कहीं शरण
इससे सत्वर भूतल त्यागा॥

उसके घायल उर का शोणित
गिरता जाता था भूतल पर।
इसलिये युगल ऋतु के रण से
हो गए रक्त से तरु तर तर॥

इसलिये टहनियों से निकले
नव-कोमल-किसलय लाल - लाल।
या फहराती थी माधव की
जय - ध्वजा बनाली लाल लाल॥

आमों की डाल डाली पर
पिक ने पंचम स्वर में गाया।
तरु तरु की हरित टहनियों पर
सौरभ - सुषमा में लहराया॥

मुसकाई कलियाँ सुमनों के
रंजित किसलय के अंचल में।
भर गया। नया - उल्लास स्फुरित
मधवनों के हरित दल दल में॥

गढ़ के छत पर बैठी रानी
थी सजा रही नव वीर-वेष।
उसके आनन को श्रद्धा से
अब देख रहा था वीर देश॥

यह साज नहीं था रानी का
यह था शृङ्गार भवानी का।
या रूप धरा पर चमक रहा
था सती पद्मिनी रानी का॥

सिर पर टोपी थी चमकदार
जिसका लहराता रंग लाल।
था चूम रहा जिसका पद झुक
अवनी का भीषण महाकाल॥

जिस लाली से नभ से भू तक
हो गई प्रभा भी लाल-लाल।
या स्वतंत्रता के मन्दिर का
झण्डा फहराया लाल-लाल॥

नव मोती की लड़ियाँ जिसमें
चमचमा रही थीं चम, चम, चम।
था रुचिर गले में हीरे का
नव-हार दमकता दम, दम, दम॥

थी कमरबन्ध में भरक पूर्ण
पिस्तौलें भयद लटकती थीं।
प्राण जहाँ पहुँचकर रिपु-दल की
हुंकारें सकल अटकती थीं॥

नव कमरबन्ध में विष-मंडित
था पेशकब्ज भी दमक रहा।
था प्रलय घटा में छिपा हुआ
मानो पवि चम चम चमक रहा॥

भुजबन्ध भुजा पर राज रही,
था शौर्य शक्ति से खेल रहा।
रानी का रोम-रोम प्रतिपल
हर हर शंकर था बोल रहा॥

किंकिनी कड़ककर कहती थी
सारा संसार हिला दूँगी।
गोरों की तोखी तोपों को
झनकारों से दहला दूँगी॥

पश्चिम की ढाल ढहा दूँगी
पूरब की चाल दिखा दूँगी।
रण-बीच शत्रु को गरज-गरज
लड़ने की कला सिखा दूँगी॥

सहसा आनन तमतमा उठा
युग अधर शीघ्र ही फड़क उठे।
क्षण कालकूट से भी विषधर
रानी के रद ये कड़क उठे॥

"झाँसी मेरी है मैं न कभी
अरि को यह गढ़ लेने दूँगी।
है मातृ-भूमि की शपथ आज
अरि को न क्षमा सोने दूँगी॥"
मां० '१४

इस अचल प्रतिज्ञा को नभ ने
फिर गरज गरजकर दुहराया।
वीरत्व—भाव झाँसी गढ़ के
तृण-तृण कण-कण में लहराया॥

सागर से चल अंग्रेज रोज
झाँसी के चहुँ-दिशि चमक उठा।
पौ फटी उषा के गृह में भी
क्रोधित रवि आनन दमक उठा॥

कामासिन देवी के पीछे
दुश्मन का डेरा लहराया।
अरि की सेना को देख शीघ्र
गढ़ का झण्डा भी फहराया॥

छत पर ही रानी चौंक पड़ी
झुककर गढ़ के नीचे देखी।
जैसे नभ में घन के टुकड़े
वैसे भू पर डेरा देखी॥

मानस गद्‌गद हो उठा शीघ्र
आँखों से चिनगारी चमकी।
चंडी दिनमणि सम चमक उठी
रानी की युग बाँहें फड़की॥

वह सोच रही थी बार बार
मन था मयूर सम नाच रहा।
लोहित आनन पर रौद्र रूप
साकार धरा पर राज रहा॥

है आज मिला अवसर मुझको
हँस प्राण-प्रसून चढ़ाने का।
नारी के दुर्बल हाथों की
हँस करामात दिखलाने का॥
वीरों को पुनः जगाने का,
पन्ना को शीश नवाने का।
जन-जन्म भूमि का इस रण में
हँस-हँस ऋण पूर्ण चुकाने का॥

है समय मिला रणचण्डी को
जी भर कर रक्त पिलाने का।
चढ़-चढ़कर खप्परवाली को
अरि सिर-माला पहनाने का॥
अरि को यह आज दिखाना है
मेरा यह देश पुराना है।
जिसने मुगलों को छका दिया
अब भी वह राजपुताना है॥

इसके कण-कण में गरज रही
वीरों की रण हुंकार अभी।
हँस रहा व्योम में वीरों का
अपने स्वदेश का प्यार अभी॥
अब भी सुरसरि के मानस पर
चित्रित वह वीर-कहानी है।
अब भी फहराता कीर्ति-ध्वजा
चित्तौड़ दुर्ग अभिमानी है॥

मोतीबाई झुककर बोली
"मैं ले लूँ वीरों की टोली।
यदि मिले आपकी आज्ञा तो
अरि-खेमें से खेलूँ होली ॥"

रानी ने कहा "सुनो आली!
ऐसा रण है आसान नहीं।
इस तरह बिना सोचे रण में
हो सकता है सम्मान नहीं ॥

इतना न समझना अरि-दल के
खेमे की सरल कहानी है।
विकराल-काल-सम मुँह बाये
अरि तोप छिपी तूफानी है ॥

इसलिये दुर्ग की तोपों से
डेरों पर गोले बरसाओ।
इस तरह रोज की छाती पर
हँस-हँसकर गोले धधकाओ ॥

नभ से अब पावक बरसाओ,
भू पर चिनगारी लहराओ।
इस समर-यज्ञ में अरि-दल के
प्राणों की आहुति दिलवाओ।"

जब इधर हो रहा था विचार
रिपु-दल के गोले गरज उठे।
सैय्यर फाटक की छाती पर
विध्वंसक गोले गरज उठे ॥

क्षण वीर दुर्ग दमदमा उठा
मारों से रंचक आह न की।
था प्रलय-सदृश वह गरज उठा,
गोलों की कुछ परवाह न की॥

उसने जीवन में देखा था
पुर पे च अस्सी घाव अभी।
घावों से जर्जर नरवर की
रण करने की यह चाव अभी॥

वह सोच रहा जब मानव के
उर में ऐसा अभिमान भरा।
मानवता का सम्मान भरा'
भारत का गौरव-गान भरा॥

जब अस्थि-चर्ममय काया के
वीरों की अचल कहानी है।
जिनकी गाथा है सुना रहा
हँस कुरुक्षेत्र अभिमानी है॥

अब भी अम्बर में चमक रही
वीरों की त्याग निशानी है।
अब अरावली के कण-कण से
सुन पड़ती वीर-कहानी है॥

मेरे उर में है ध्यान बस
दुस्तर-पवि राम पाषाणों के।
टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा मैं
अरि-दल के तीव्र बाणों के॥

क्या वीर-हृदय भी दहल उठे
गोली गोलों के वारों से?
क्या वीर-केसरी काँप उठे
जम्बुक-अरि की हुंकारों से?

मद-मस्त-द्विरद रुक जावे क्या
रिपु-कुत्तों के गुर्राने से?
रण शूर-हृदय क्या कँप जावे
कायरता के धमकाने से?

मैं दिग्दिगन्त दहला दूँगा
नभ को भूतल पर ला दूँगा।
लेकर अञ्जलि में अरि-शोणित
माता को मैं नहला दूँगा॥

गढ़ मन ही मन यह कहता था,
गोले पर गोले सहता था।
अपनी छाती उत्तान किये
झाँसी की जय-जय कहता था॥

गढ़ के बाहर अरि की सेना
छिप-छिपकर प्रतिपल बढ़ती थी।
'अब दुर्ग लिया अब दुर्ग लिया'
यह मन्त्र सतत वह पढ़ती थी॥

चलती गोली की चादर के
नीचे रिपु की सेना बढ़ती।
जैसे अपने बिल से निकली
चींटी की हो सेना बढ़ती॥

थे दुल्हा जू औ खुदाबख्श
चुपचाप तोप को चढ़ा रहे।
रण नीति कला के पन्ने को
थे उलट-पलट कर पढ़ा रहे॥

अरि की सेना आगे बढ़कर
ललकार उठी, किलकार उठी।
अपने घेरे के बीच देख
गढ़ की तोपें हुंकार उठीं॥

फिर एक साथ हो गरज गरज
वे लगीं उगलने आग प्रबल।
जल जलकर राख लगी होने
अरि की बढ़ती सेना पैदल॥

कितने भूतल की शैय्या पर
सो गये शान्त होकर निश्चल।
कितनों के तन से बहती थी
शोणित की परनाली कल कल॥

सावन के घन की मारों से
जैसे पवत झरता झर झर।
आहत अरि के तन से वैसे
थी रक्त धार बहती सर-सर॥

कितने थे पड़े कराह रहे,
कितने सोकर चिल्लाते थे।
कितने बन्दूकों में गोली
भरते-भरते गिर जाते थे॥

कितने कहते थे "भगो भगा
कितने कहते थे "रुक जाओ"।
कितने कहते थे मरने से
अच्छा है चलकर झुक जाओ॥

गोरी पल्टन शोणित से तर
कहती यह कैसी रानी है?
हो गया आज से दुर्लभ अब
वह टेम्स नदी का पानी है॥

अब लौट न पावेंगे घर को
यह रानी बनी भवानी है।
इसके आगे हम लोगों की
अबला-सम बनी जवानी है॥

वे नहीं जानते भारतीय
नारी में अभी रवानी है।
अब भी यमुना की धारा से
सुन पड़ती वीर कहानी है॥

तो कभी नहीं हम पद रखते
यह वीर देश अभिमानी है।
नारी में जब यह शक्ति भरी
तो नर की कौन कहानी है॥

लेकिन अब क्या कर सकते हैं
घर सात सिन्धु के पार बसा।
है इधर हमारे हृदयों में
रानी का जय जयकार धँसा॥

जब तक अरि-सैनिक सोच रहे
थे रणस्थली में मौन खड़े।
तब तक गढ़ से उनके ऊपर
शत गोले क्षण में बरस पड़े॥

गोरी पल्टन सो गई शीघ्र
शोणित से रंजित दलदल पर।
ज्यों पके खेत को काट कृषक
जैसे रख देता भूतल पर॥

जग उठी 'प्रतीची' हुई मगन
यह विजय देखकर विहँस उठी।
तरु तरु की शिखा-शिखा पर थी
खग की पंचायत चहक उठी॥

चौदहवीं हुंकार

रात का पहला पहर था
अवनि सोती थी सुनिश्चल।
थक गया था वायु चलकर,
सो रहे थे मौन शतदल॥

मार्ग निश्चल सो रहे थे,
राजपथ भी सो रहे थे।
मातृ भू की गोद में सब
भाव जग के सो रहे थे॥

मन्द सरसिज के भवन में
भृंग सुख से सो रहा था।
व्योम खोकर हसमणि को
मौन होकर रो रहा था॥

भीगता-सा जा रहा था
हरित माँ का शान्त अंचल।
कालिमा में था दिखाता
दीप जुगनू का नया दल॥

सो रही थी शान्त लहरें
नार की शैय्या बिछाकर।
सो रहे खग घोंसलों में
साम्य गीतावलि सुनाकर॥

सुन अगर पड़ता कहीं तो
झींगुरों का राग प्यारा।
पूर्व की काली दिशा को
था जगाता शुक्र तारा॥

कौन कह सकता भला था
कालिमा में क्या छिपा है ?
आज के दृग मूँदने में
नियति ने क्या हव रचा है ?

भूमि पर जिसके लिये
राजा बने थे दीन त्यागी।
राजपद के त्याग की थी
विमल उर में बुद्धि जागी॥

माँ-बहन ने रूप की
होली जला जिसको बचाया।
तुच्छ नश्वर देह का
यौवन सरस जिस पर चढ़ाया॥

मान का सौदा किया था
माँग का सिन्दूर धोकर।
सरस सावन में सलोन
रूप का संसार खोकर॥

जनक जननी ने विहँसकर
प्राण प्रिय निज लाल त्यागा।
वृद्ध भामाशाह ने निज
कोष का मणि लाल त्यागा॥

जिस लिये क्षत्राणियाँ थीं
प्राण – वल्लभ का सजातीं,
हाथ में तलवार देकर
युद्ध में निर्भय पठातीं ॥

हो गये प्रासाद कितने
श्मान पर जल राख क्षण में।
मान हित कितने विभव भी
सो गये चिर धूल कण में ॥

अभ्रभेदी दिव्य नगरी
हो गई जनहीन क्षण में।
गूँजता जिनका अमर
इतिहास अब भी है गगन में ॥

पुण्य भारत देश के नव
मान को क्षण में मिटाने।
चल पड़े दो नीच गढ़ से
भेद रिपु-दल को बताने ॥

कालिका सी धर्मनिष्ठा
कम की उज्ज्वल—निशानी,
चण्डिका सी वार — पूज्या
शौर्य — जननी — राजरानी,

थी सुनाती वीर—जन को
देश की पावन—कहानी।
थी बताती मार्ग जिससे
रह सके युचि गंग—पानी ॥

फूँकती थी मंत्र रानी
जग उठी थी रूप-माला।
फूल में भी जग उठी थी
क्रोध की दुर्दर्ष—ज्वाला॥

कल अभी तक जिस वदन पर
थी विहँसती पुष्प माला।
राग में भी भिप रहा थी
स्वर्ग की भी देव बाला॥

कर चरण में राजती थी
मेंहदी की दिव्य—लाली।
हाथ में थी चमचमाती
पुष्पमय — कलधौत — थाली॥

जा रही थी देव-गृह में
फूल की माला चढ़ाने।
देव—मंगल के लिये
केशव—कुलेश्वर को मनाने॥

गा रही थी गीत जिसमें
स्वत्वमय—अभिमान हँसता।
रागिनी के साथ था निज
देश का सम्मान हँसता॥

आज निशि में – फूल सी
कोमल नगर की दिव्य—माला।
त्यागकर तन के कुसुम को
थी पहनती अर्धि—माला॥

हाथ में यी चमचमाती
चपला सम खड्ग माला।
गात में थी दमदमाती
क्रोध की दुर्द्धर्ष ज्वाला॥

फूल सा कोमल वदन भी
हो रहा था वज्र सा अब।
राजता था वर्म तन पर,
था विहँसता चर्म भी अब॥

काँपता था काल अब
अति दूर उसने शान्त होकर।
पृष्ठ पर तूणार शरमय,
व्योम म था केतु चचल॥

थ घड़े नाते घनाघन
यामिनी में वे श्याम।
दरती जिनको सतत थी
दुर्ग की भीषण शासमी॥

चाहती थी यदि मिले
आज्ञा अभी इनको सुला दूँ।
जाति के इन घातकों को
शान्त की ढरी बना दूँ॥

ना रहे थ य बढ़
हा गाँव को नागोर लेने।
भेद देकर दुर्ग का निप
डेरा का सम्मान पाने॥

पान के लघु मान पर ही
मान वीरों का मिटाने।
दुर्ग की रण-मंत्रणा सब
रात्रि में रिपु को बताने॥

शीशदानी के हृदय पर
वज्र का गोला गिराकर,
चाहते थे राज्य करना
शीघ्र रानी को मिटाकर॥

हाय! अपने जाति का अब
मान मिटाने जा रहा है।
हाय! अपने वंश का सब
ज्ञान मिटने जा रहा है॥

आज मन्दिर के सुयश का
गान मिटने जा रहा है।
आज गीत का विमलतम
ज्ञान मिटने जा रहा है॥

आज फिर राठौर की है
मिट रही उज्ज्वल निशानी।
आज घुलने जा रही
चित्तौर की पावन कहानी॥

जा रही है आज मिटने
भूमि से नारीत्व माला।
जा रही है आज जलने
मातृ-उर पर पुत्र-ज्वाला॥

आन होने जा रही है
अशुचि सुरसरि नीर धारा।
आन खींचा जायगा निज
धर्म का पावन सहारा॥

आज हिन्दू हा मिटाता
इस धरा से हिन्दुस्थानी।
या मुसलिम ही मिटाता
इस अवनि से मुसलमानी॥

इस तरह निज पूर्वजों की
याणियाँ धिक्कारती थीं।
दिव्य ज्वाला में जली वे
नारियाँ फुफकारती थीं॥

शीघ्र हो निशा में कृतघ्नो
अरि शिविर के पास पहुँचे।
सन्तरी भी हाथ में ले
असि गरजकर पास पहुँचे॥

पीरअलि योला विनय से
काँपता था गात थर थर।
कायरों के शीश से भी
चू रहा था स्वेद तर तर॥

जा सुनाया शिविर में यह
पीरअलि आया मिलन को।
दुर्ग का सब भेद दने
आ गया है अरि दमन को॥

बात सुनकर शिविर रक्षक
हो गया गद्‌गद उसी क्षण।
पा गया अपना अभीप्सित
खिल उठा सरसिज सदृश मन॥

वीर रक्षक ने त्वरित हो
वृत्त नायक को सुनाया।
हो उठा गदगद मुदित मन
शीघ्र लाने को पठाया॥

आ गए दोनों कृतघ्नी
रोज ने उठकर बिठाया।
मान कर हँस पान देकर
दिव्य भोजन भी कराया॥

बात आगे की चली फिर
रोज ने पूछा विनय से।
कर रही रानी भला क्या
दुर्ग में रचना हृदय से।

प्रश्न यह नभ ने भयातुर
रात्रि का रोकर सुनाया।
पारअसि ने दुर्ग का सब
भेद क्षण में वह सुनाया॥

"कौन हैं जो आप के ये
साथ आए हैं यहाँ पर?
काम इनसे है मिला क्या
दुर्ग में रण में वहाँ पर?

"नाम इनका दूलहा जू
दुर्ग-फाटक हाथ में है।
पाँच तोपें काल सा
विकराल इनके साथ में है॥

'बोलिए खिड़की खुलेगी,
बोलिए फाटक खुलेगा ?
दुर्ग में घुस जाय सेना
जो कहें वह पथ मिलेगा ?

है प्रभो ! ये मित्र मर
शीघ्र फाटक खोल देंगे
आपके व्याकुल हृदय में
विहस अमृत घोल देंगे॥

रोज ने क्षण में वहाँ पर
शुद्ध गङ्गा जल मँगाया।
दूलहाजू पीरअलि से
शपथ का लेखा सुनाया।

'हिन्दु है सौगन्ध खाना
हाथ में ले गङ्ग-पानी।
मैं इसी को मानता हूँ
बात की पावन निशानी॥

काँपने थर थर लगे कर
दूलहाजू के उसी क्षण।
काँपने थर थर लगा अब
पतित का भी भय से मन॥

बुद्धि पर परदा पड़ा था
गाँव की जागीर सुनकर।
भाग्य भी खुल जायगा अब
स्वार्थ को यह बात सुनकर॥

देश द्रोही ने त्वरित वह
ले लिया शुभ गङ्ग पानी।
रो उठी निज मातृ उर में
मूँदकर दृग हिन्दुस्थानी॥

गरजकर धिक्कारती चण
पूर्वजों की थी कहानी।
नीच के दुष्कम पर थी
कांपती रानी भवानी॥

पान के लघु मान पर रे
नीच ! तूने मान खोया।
गाँव की जागीर पर
निज देश का सम्मान धोया॥

लौट आए रात में ही
दिव्य नगरी सो रही थी।
व्योम की उडुगण प्रभा में
मन्त्रणा भी हो रही थी॥



पन्द्रहवीं हुंकार

जय भूतनाथ, जय रुद्र मूर्ति,
जय कालमूर्ति, जय-जय कराल।
जय जय त्रिमूर्ति, जय शक्ति रूप,
जय सैन्य-पाल, जय-जय विशाल॥

जय-जय कुमार, जय जय उदार,
जय बाहुलेय जय मुण्डहार।
जय एकदन्त, जय विघ्नराज,
जय कार्तिकेय, जय दण्डधार॥

जय अट्टहास, जय कालञ्जर,
जय नीलकण्ठ, जय कामदेव।
जय अम्बयोनि जय नाभि जन्म
जय कमलयोनि, जय आदिदेव॥

थी रात पहर भर बीत चली
छा गया अवनि पर अन्धकार।
रो उठी प्रकृति निज वेष देख
था कहीं न जग का आर-पार॥

तम को जाता नीरवता को
क्षण कँपा रहा था जय निनाद।
शोकाकुल इसी दिशाओं को
था जगा रहा गज शंख नाद॥

माँ विश्वकारिणी ! एक बार
जग का कण-कण दमदमा उठे।
गोरे मुण्डों की माला से
तेरी ग्रीवा चमचमा उठे ॥

इसमें है जग का मान भरा,
है गीता का शुचि ज्ञान भरा।
माता ! तेरे क्रोधानल में
है वीरों का सम्मान भरा ॥

लहरता इससे सप्त सिन्धु
चमचमा रहा है आसमान।
इससे ही हिमनग का विशाल
पावन किरीट है भासमान ॥

माता ! तेरी ही ज्ञान-ज्योति
भासित करती जग भाल भाल।
तेरी लाली में लहराता
है रवि का आनन लाल लाल ॥

इस भाँति दुर्ग में होता था
आवाहन रण मतवाली का।
पावन-सुहास भी फैल गया
ऊषा के गृह की लाली का ॥

उस ओर शिविर से निकल पड़ी
अरि की सेना हथियार लिए।
असि-कुन्त-तीक्ष्ण हथियार लिए
तोपों की अगम कतार लिए ॥

ऊषा ने अँगड़ाई लेकर
नभ में हँस कुंकुम फेर दिया।
इस ओर तुमुल कोलाहल से
गोरों ने गढ़ को घेर लिया॥

छह भीमकाय तोपें अरि की
लग गई दुर्ग की छाती पर।
शत शत गोले भी बरस पड़े
जननी की शुचिता थाती पर॥

हर हर शंकर का जय निनाद
गढ़ के कण-कण में गूँज उठा।
मन्दिर के घण्टों के रव से
नभ का प्रांगण भी गूँज उठा॥

देश दूल्हा जू ने
इतने में फाटक था खोला।
युग के पावन सिंहासन पर
गिर पड़ा अचानक अरि गोला॥

इस बीच ओरछा फाटक पर
सुन्दर पहुँची तलवार लिए।
अपने दूल्हा जू के सम्मुख
गरजा स्वदेश - सत्कार लिए॥

उस नीच जाति दूल्हा के इस
विश्वासघात पर सरज उठी।
बाहर अरि की ललकारों पर
यह सिंहनाद सी गरज उठी॥

ओ रे विद्रोही दूल्हा जू !
रिपु दल से तू क्या पावेगा ?
तेरे उर का भी गरम रक्त
अरि कुन्तों पर लहरावेगा ॥

जिस रानी ने विश्वास किया
तू ने उसका सिर काट लिया !
रे नीच कलंकी ! तू ने ही
माता का शोणित चाट लिया ॥

तू ने कलंक का टीका अब
माँ के मस्तक पर लगा दिया।
अब से स्वतन्त्रता देवी को
हम सबसे कोसों भगा दिया ॥

सुन्दर की वह प्यासी नागिन
अगार सदृश दमदमा उठा।
उस नीच कृतघ्नी का शोणित
पीने को अब चमचमा उठी ॥

सुन्दर आगे कुछ कह न सकी
सिंहनी सदृश वह छूट पड़ी।
एकाकी दूल्हा जू पर वह
'रानी की जय' कह टूट पड़ी ॥

दूल्हा जू ने करके छल से
तलवार वार को रोक दिया।
दो खण्ड हो गया चन्द्रहास,
सुन्दर को छल पर रोक दिया ॥

इस बीच आ गए अरि-सैनिक
सब टूट पड़े उस नारी पर।
सो गयी शीघ्र सुन्दर लड़कर
बैरी की गरम दुधारा पर॥

अरि की सेना कटती मरती
बढ़ती गढ़ भीतर चली गई।
अब हन्त! हमारी स्वतन्त्रता
अपने स्थान से चला गई॥

पग पग के हित उस दुर्ग मध्य
सिर का था अगम पहाड़ बना।
गढ़ के मस्तक पर तोपों के
धूँए का विशद वितान तना॥

तोपें करती थीं धायँ धायँ
चल रहा गोलियाँ सन सन, सन।
कट कर असि गिरती थी भू पर
रव होता था खन, खन, खन, खन॥

झंझा झकोर गर्जन बम से
हो उठा दुर्ग डगमग डगमग।
छुट गया धैर्य धीरज का भी
ब्रह्माण्ड हिल रहा था डग, डग॥

हिल उठी धरा, हिल उठा गगन
अवनी पर वह भूडोल न था।
हो गया धूल से धूमिल नभ
पर मस्तक का हिलाल न था॥

उठ गई वेदिका, उड़ा अजिर,
मिट गया स्वर्णमय सिंहासन।
काँपा अनन्त, कँप उठी मही,
डगमगा उठा हर का आसन॥

गढ़ के फाटक भी चूर हुए
जल उठा नगर का ठाट -बाट ।
रानी के सैनिक पाट रहे
थे भू को अरि सिर काट काट॥

गढ़ की छत से घन गरज तोप
उगल लगी उगलने प्रबल आग।
जिसकी ज्वाला से जल भुनकर
रिपु चले दुर्ग से शीघ्र भाग ॥

इस बीच वहाँ पहुँचा रघुभर्टे
लेकर नूतन सेना अपार ।
अरि की सेना फिर लौट पड़ी
जिसका न कहीं था आर पार॥

रण टूट पड़े वे सब मिलकर
गढ़ का वैभव हर लेने को।
रानी के सैनिक जूझ पड़े
जननी का ऋण भर देने को॥

रण की गङ्गा में उतर पड़े
वे यश की तरणी खेने को।
रिपु-दल का उर शोणित लेकर
जननी का शुचि पग धोने को॥

यह चला रक्त का परनाला
वीरों ने रण-होली खेली।
'रानी की जय, रानी की जय'
यह गूँज उठा रण में बोली॥

राना अरि-मर्दन काट-काट
उड़ रही पवन में फर,फर ,फर।
लपलप करता असि जिह्वा से
शोणित बहता था तर, तर, तर॥

घर-वानि पवन को चीर-चीर
चंचल गति से लहराता था।
पलकों के गिरते गिरते ही
अरि मुण्डों पर चढ़ जाता था॥

कोई था ऐसा शत्रु नहीं
जिसके न सामने आता था।
कोई था ऐसा स्थान नहीं
जिसका न हृदय थर्राता था॥

'रानी आई' यह कहने को
जब तक अरि - जिह्वा हिलती थी।
तब तक रानी की असि चमचम
अरि-कण्ठों से जा मिलती थी॥

रानी के भीषण रण से भी
वह अरि-दल बढ़ता आता था।
गढ़ के मस्तक को जला जला
टिड्डी सम चढ़ता आता था॥

जल उठा अस्तबल, जला भवन,
जल उठा देश का स्वाभिमान।
जल उठा आर्यजन का युग का
सचित गढ़ का गौरव निशान॥

जल उठीं दूकानें, जले धाम,
जल उठे मुहल्ले एक साथ।
उस महाविकट बर्बरता में
हो गया आज जौहर अनाथ॥

लपटें नभ को छूने बढ़तीं
कहतीं अम्बर तू भी जल जा।
जय कलित कीर्ति झाँसी-ललाम
जल रही साथ तू भी जल जा॥

किसलिये टिका है निराधार
ओ नीलवर्ण ! झुककर आ जा।
या प्रलय सदृश ज्वाला बनकर
रिपु दल की छाती पर छा जा॥

गढ़ की तोपें वीरासन में
थीं धायँ धायँकर गरज रहीं।
रह के जलते क्रोधानल के
अंगार अवनि पर बरस रहीं॥

था भीमनाद से गगन पूर्ण,
सब बधिर दिशाएँ काँप उठीं।
धरती के रज-कण धधक उठे
अरि की बर्बरता काँप उठी॥

क्षण महामृत्यु गढ़ से उतरी
अरि का जीवन भी लेने को।
समर में माता के पग पर
जीवन अर्पित कर देने का॥

विकराल काल का ताण्डव था
हो रहा अवनी के अंचल पर।
अरि का शोणित लहराता था
कण-कण के रंजित दल-दल पर॥

नभ महाशान्ति का आवाहन
प्राणों को गहराइ करती थी।
विप्लव की नाटकशाला का
निर्माण विहँसकर करती थी॥

चल रहा गोलियाँ थी सन सन
गोले छुटते थे धायँ धायँ।
था दानवता का अट्टहास,
मानवता करती साँय साँय॥

दोनों दल के गोले छुटते
छुटता चिनगारी चमक चमक।
विकराल काल की लाल आग
लपलपा रही थी दमक दमक॥

एक रात्रि नभ गुञ्जन करते
वह धूम्र सहार था बढ़ता।
इस प्रकार शत्रों का उर दला
दमकता नव दिन आया॥
मा १६

पाषाण चूर्ण हो कण होते
गोलों की रण फुफकारों से।
बहते रजमय संताप लिए
गढ़ के पाषाण दरारों से॥

अरि दल के क्रोध हुताशन की
निर्दयता भी ललकार चली।
वह चले त्रस्त उनचास पवन
चीत्कार मच गया गली गली॥

पहले गढ़ का आसन चमका
क्षण में ही फिर चमचमा उठा।
नभ की छाती पर ज्वालामय
था धूम्रकेतु दमदमा उठा॥

हो गढ़ पवन की मन्थर गति
वह चला दुःख का भार लिए।
अपनी झाँसी की सुकथा का
उर में था व्यथा अपार लिए॥

कोलाहल पर कोलाहल सुन
चीत्कारें दीन अनाथों का।
रानी का हृदय फटा जाता
वाणी सुन लुंज निहत्थों की॥

गढ़ के ऊपर वह चढ़कर थी
प्राचीर-दुर्दशा देख रही।
किस भाँति प्रलय का राज्य हट
वह मार्ग व्यथित थी देख रही॥

सहसा रानी ने देख लिया
जल रहा पुस्तकालय धू धू।
उस संचित निधि को ही खाकर
है आग विहँसती नभ छू छू॥

जल रही हाय! डगमग पग की
अन्धों की लकुटी गीता है।
नव ज्ञान ज्योतिमय वह मन्त्र
गिरिधर की कथा सुनाता है॥

जल रहे हमारे कपिल, व्यास
जल रही भीष्म की शर शय्या।
जल रहा शास्त्र का अमल पथ,
जल रही वासुकी फन शय्या॥

जल रहा विश्व का धर्मसूत्र,
जल रहा ज्ञान का पुण्य धाम।
जल रहे स्वर्ग के सुगम मार्ग
साकेत सन्त भगवान राम॥

यह जला धन्यधन जला धाम
बन सकता है फिर राज भवन।
न्यायग्रोध गढ़ में फिर से
आ सकता है चेतन पावन॥

भर सकती घर में धनराशि
बस सकती है पुर हाट, गली।
हो सकते हैं जन जन प्रमुदित
हँस सकती है नव कली कली॥

पर जले वेद पायन पुराण
जिनकी गरिमा है लाल लाल ।
ये शास्त्र, काव्य, इतिहास ग्रन्थ
जो हस्तलिखित थे शुचि विशाल ॥

प्रतिलिपियाँ करने को जिनकी
अन्यान्य देश के नौजवान,
आते थे, शीश झुकाते थे,
करते थे जिनका यशोगान ॥

इन वेद शास्त्र के निर्माता
सद्बुद्धि युक्त आलोक धाम,
अब कहाँ मिलेंगे वे ऋषिवर
सद्धर्म कर्ममय यति ललाम !

अब कहाँ मिलें जमदग्नि आत्रेय
गौतम, वशिष्ठ, कश्यप महान् !
देवर्षि, मृगज, शृङ्गी, अगस्त्य,
पाणिनी, कपिल साधक ललाम ?

अब कौन करेगा यशोगान
आजादी के दीवानों का !
अब कौन कहेगा मौन मौन
आख्यान समर मस्तानों का

अब कौन कहेगा चुपके से
सन्देश पद्मिनी रानी का !
अब कहाँ मिलेगा मौन मंत्र
पन्ना की धार कहानी का ?

आहत मानस में जाग उठ
उद्गार महारुद्राणी का।
तन-रोम रोम फिर फड़क उठा
उस समर भवानी रानी का।
आली सुन्दर से यह बोली
वाणी से बिजली कड़क पड़ी।
आशा सर पर अनुभाव परी
सगीत सुनाती थिरक पड़ी॥

सुन्दर! सुन्दर! मेरी प्यारी
झाँसी की है दुर्गति ऐसी।
यह देह बनी जिसकी रज से
उस पर अरि की दुर्मति ऐसी॥
है काँप रहा गढ़ का कण-कण
वैरी के अत्याचारों से।
हैं विकल दिशाओं के दिग्गज
वञ्चक अरि की फुफकारों से॥

तो गरुड़ अभी बन जाना है
वैरी का यह दिखलाना है।
यह वही वीरवर देश अभी,
जिसका केसरिया बाना है॥
उसके झण्डे का रंग लाल
रण करन में दीवाना है।
अब भी ललकार रहा रण में
(क्षत्रिय) क्षत्रिय बाना है॥

फिर से रानी के मानस में
असमित प्रश्नों की आग जगी।
उस धीर हृदय को कँपा कँपा,
क्षति की नव करुणापाग जगी॥

वह धीर हृदय जो पुत्र शोक,
पति - शोक से न भी कांपा था,
जिसने संगर में विहँस विहँस
अरि सिर से भू को नापा था॥

जिसको न कँपा तक पाया था
रण महाप्रलय उनचास पवन।
जो हृदय कमल सम खिलता था
सुनकर गोली की सनन, सनन॥

वह धीर हृदय भी कांप उठा
चलदल के कोमल पत्ते सम।
रो उठी बिलखकर महरानी
नादान दुधमुहें बच्चे सम॥

रो उठीं नवो निधियाँ मानो,
थी तीर्थराज विमला रोई।
आनन्दपुरी, जगदीशपुरी,
कमलासन पर कमला रोई॥

अणिमा रोई, गरिमा रोई,
थी विन्ध्यवासिनी भी रोई।
करुणा रोई, वरुणा रोई,
थी विघ्नवारिणी भी रोई॥

यह रही सतत अविरल गति से
आँसू की धारा थी झर झर।
तन पर का रंजित चीनांशुक
हो गया पसीने से तर तर ॥

इस बीच यहाँ सिरदानो ने
आकर नूतन सन्देश दिया।
हो गया शान्ति का अन्त मनो
उसने रण का उपदेश दिया ॥

जननी ! रणधीर गौसखाँ ने
कितनों को लड़ना सिखा दिया।
घनगरज तोप की मारों से
कितनों को मरना सिखा दिया ॥

लेकिन बेचारा क्या करता
एकाकी रिपु की मारों में।
अन्यायी का फुफकारों में
अरि-दल के वारे वारों में ॥

लग गई हृदय में रिपु गोली
सो गए भूमि के अचल पर।
लिख दी माख्त ने यार-कथा
सकन्तर के कम्पित दल दल पर ॥

यह सुनकर रानी उछल पड़ी
सिंहिनी सदृश वह तड़प उठी।
अरि-हृदय-रक्त की प्यासी-असि
सत्वर बिजली सम कड़क उठी ॥

युग अधर अचानक फड़क उठे
क्रोधाग्नि जगी उस रानी की।
"भाऊ को खाँ की तोपें दो"
यह आज्ञा मिली भवानी की॥

चल पड़े पेशमुख चुपके से
सिर पर आशा का भार लिये।
मुख पर विजयी उल्लास लिये
उर में स्वदेश का प्यार लिये॥

था राजभवन का वक्षस्थल
अब भी संगर का दीवाना।
जुट गये वीर सरदार पहन
तन पर फिर केसरिया बाना॥

रानी को आशीर्वाद मिला
था रणचण्डी महरानी का।
बस मौन-मौन आवाहन था
शिवदूती, सती, भवानी का॥

वह समर धीष जा विहँस उठी
उर में थी व्यथा अपार भरी।
कम्पित अधरों से निकल पड़ी
कोमल वाणी सन्ताप भरी॥

"वीरों! जो आप सभी ने अब
है अरि को लड़ना सिखा।
हँस समर सिन्धु पर सेतु बना
दुस्तर पर चढ़ना सिखा दिया॥

प्यारी झाँसी···की···रक्षा को
वीरों ने सिर की माला से।
धनिकों ने द्रव्य निधानों से,
दीनों ने उर की ज्वाला से॥

जननी ने घर सपूतों से,
सतियों ने अचल सुहागों से।
ललनाओं ने गढ़-रक्षा की
निज राग-रंग के त्यागों से॥

फिर भी जय लक्ष्मी दूर अभी,
अब होगा बेड़ा पार नहीं।
है विधि हम सबके अभी वाम
झाँसी का है उद्धार नहीं।

इसलिये गुप्त पथ से गढ़ के
सबको अब बचकर जाना है।
सन्ध्या के धूमिल आँचल में
छिपकर अब प्राण बचाना है॥

मेरे इस तन को जीते जी
अरि स्पर्श नहीं कर सकता है।
मम पद की धूल निशानी पर
पद भी न कभी रख सकता है॥

अब एक मार्ग ही है मुझको
इस तन तरणी के तरने का।
जननी का ऋण भर देने का,
पितरों का तर्पण करने का॥

है भरा हुआ बारूदों से
इस वीर किले का वक्षस्थल।
जिससे रिपु दल की छाती में
धड़कन होती रहती प्रतिपल॥

अब जाकर उसमें आग लगा
मैं स्वयं भस्म हो जाऊँगी।
युग के बिछुड़े निज पितरों के
पद पंकज में मिल जाऊँगी॥

सुनकर यह धर्म पुरोहित ने
उपदेश सुनाया रानी को।
नैराश्य-नींद से जगा दिया
झाँसी-गढ़ की कल्याणी को॥

जिसने स्वराज की वेदी पर
संकल्प किया मिट जाने का।
इस महायज्ञ में हँसते ही
साकल्य सुरभि बन जाने का॥

यह समर भवानी सुना रही
है कायरता की बात यहाँ।
इससे बढ़कर यदुनन्दन को
पहुँचेगा अब आघात कहाँ!

गीता-मुकुन्द का अब ऐसा
हो सकता है अपमान कहाँ।
इस मातृ भूमि के गौरव का
होगा फिर से सम्मान कहाँ!

सिर नीचा किये महाराना
सुन रही बात थी ब्राम्हण की।
पर रोम रोम था फड़क रहा
सह रही बात थी ब्राह्मण की ॥

अब भी अनीकिनी है अपार,
पा सकती है माँ मुक्ति अभी।
इस कठिन निराशा के तम में
है विहँस रही नन युक्ति अभी ॥

है अभी पेशवा की सेना
कालपी नगर में नव विशाल।
जिससे रणचण्डी की फिर से
हो सकती है सज्जा कराल ॥

यदि विजित हो गई है दिल्ली,
है कानपूर का हुआ पतन।
तब भी जनता की आशा का
कर सकता है अरि नहीं हनन ॥

है विन्ध्य अपथ स्वातन्त्र्यपूर्ण
है महाराष्ट्र दमदमा रहा।
जिनका अतुलित पुरुषार्थ आज
नभ पर है अब चमचमा रहा ॥

इसलिये महारानी गढ़ से
घोरवी शत्रु सेना निकलें।
जिनका अनुपम पुरुषार्थ देख
कायरों हृदय रण का मचलें ॥

यह धर्म पिता का महामंत्र
बल फूँक चला था कण कण में।
जग उठी धरा, जग उठा गगन,
जग गया शौर्य जन मन-मन में॥

रानी की आँखों के सम्मुख
था कुरुक्षेत्र चमचमा रहा।
स्यन्दन पर बैठा रुद्र रूप
अर्जुन का था दम दमा रहा॥

थे बने सारथी स्वयं कृष्ण
रथ अनिल -वेग लहराता था।
नव रुधिर कपिध्वज अम्बर में
फर, फर, फर, फर फहराता था॥

रानी की भी बाहें फड़की,
कर में असि चमचम चमक उठी।
सन्ध्या की कबरी में गुँथी
मुक्ता मालायें दमक उठीं॥



सोलहवीं हुंकार

हृदय से चली आ रही थी रवानी,
किले से चली आ रही थी भवानी।

समय ही प्रबल है किसी ने न जाना,
वही है हँसाता, वही है रुलाता।
महामेरु को नीर तल पर सुलाकर
जलधि के हृदय पर अचल है बनाता॥

उसी की कथा कह रही सिन्धु लहरें,
उसी की कृपा पर धरा डोलती है।
वही है हृदय में बसा प्राण बनकर,
उसी की दया पर गिरा बोलती है॥

सितारों की आँखों से नभ रो रहा था
गिरा कह रही थी गिरा से कहानी।
हृदय से चली आ रही थी रवानी
किले से चली आ रही है भवानी॥

अगम पथ निकलकर पवन घूमता था
सुगम मार्ग पद पर पवन था बनाता।
समाभक्ति व मिथ्या का पुर बेधकर था
नदी वन, पहाड़ों में दीपक दिखाता॥

जहाँ राजरानी वहीं गति विजय की
कहानी सुनाती बढ़ी आ रही थी।
पहाड़ों की छाती कँपाती थराथर
अभय हो शिखर पर चढ़ी जा रही थी॥

किला जल रहा था, प्रभा रो रही थी,
मिटी जा रही थी विजय की निशानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

कृशासन था तन का, हुताशन का आसन
धरा पर, पवन पर जमा जा रहा था।
लिये धूम्र सेना निगलने गगन को
अनल-ज्वाल हँसता बढ़ा जा रहा था॥

भला कौन रोकेगा रणचण्डिका को,
जो चाहे तो वह शीघ्र जग को हिला दे।
धरा को गगन से, गगन को धरा से,
पलक मारते ही रगड़ कर मिला दे॥

किले को मनाती तिमिर को कँपाती,
चली जा रही थी निडर राजरानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी॥

गिरे को उठाती, मने को झुकाती,
अहं को चलाती, चला जा रही थी।
था कर में दुधारा, थी दर म भवानी,
जवानी नचाती बढ़ी जा रही थी॥

धरे हाथ, शायक से आरि सिर उड़ाती
कबन्धों की साड़ी चढ़ी जा रही थी।
निराशा के बादल से 'आशा' निकलकर
यही गीत गाती चली आ रही थी॥

निडर हो समर में लड़ो वीर! तब तक
धरा पर है जब तक त्रिपथगा का पानी।
हृदय से ढली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी॥

विजय के लिए धन हुताशन बनी थी,
बनी बाड़वानल थी सजल वाहिनी में।
सघन घन घटा में प्रखर-वायु थी वह,
नी थी प्रभा पुञ्ज तम वाहिनी में॥

पहड़ों की चोटी की चोटी बनाकर
धरा पर सुलाने में भेदा बना थी।
चली जा रही थी सुरों कंटकों में,
पहाड़ा कटारों की माड़ी बनी थी॥

पता था किसी को कि काँटा व ढूँढकर,
भला अब चलेगी व झाँसी की रानी?
हृदय से ढली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी॥

गगन चाहता था, धरा पर उतरकर
सजल नेत्र से चूम ले युग्म पद को।
सघन घन घन में तड़ित चाहती थी
गले से मिला ले भवानी के रद को॥

रुचिर चन्द्रिका चाहती थी कि लेना
मधुर हास रानी के सालोक मुख से।
बताती चली जा रही थी जगत को,
कि माता की बेड़ी कटेगी न सुख से॥

सिखाती चली जा रही थी तिमिर में,
कि कैसे मिलानी है स्वर्णिम जवानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी॥

जो अड़ते थे घोड़े कहीं साथियों के,
सवारों की ठुड्ढी अगर काँपती थी।
तो रानी विहँसकर थी घोड़ा बढ़ाती,
पलक मारते विघ्न को नापती थी॥

बताती थी पथ वह तिमिर की घटा में
छटा थी दिखाती वह असि के जहर की।
सुनाती थी जयघोस में वह कहानी
कुमारी के खप्पर के शोणित लहर की॥

लगा दी हिमालय के ऊँचे शिखर पर,
अमर शौर्य की चमचमाती निशानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी में॥

बँधा पीठ पर था तनय पीत पट से,
जिसे पूज्य राना ने दत्तक लिया था।
चमकता चमाचम मुकुट शीश पर था
जिसे पूर्वजों ने सुशोभित किया था॥

बढ़ी जा रही थी दनादन विपिन में,
चढ़ी जा रही थी तिमिर को कँपाती ।
था थर थर विकम्पित महाकाल भय से
विजय की पताका थी नभ में उड़ाती ॥

बची वृद्ध भारत की लकुटी यही थी,
उसे देखती थी चकित हिन्दुस्थानी ।
हृदय से चली जा रही थी रवानी ।
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

लिये वाहिनी आ के पीकर ने तत्क्षण
विपिन में ही रानी को ललकार घेरा ।
उधर रात्रि की चित्रकारी पर नभ में
उषा ने भी हँसकर के झाड़ू था फेरा ॥

खड़े वीर चारों से ले-लेकर भाले,
चला गोलियाँ सन-सनाती हवा में ।
किसी को पता न था जीवन-मरण का
विषैला गरल उड़ रहा था हवा में ॥

गगन चाहता था धरा से बताना कि,
रानी नहीं है, है रण में भवानी ।
हृदय से चली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

लिये हाथ में [illegible] सुभगिन
भवानी सी रानी समर कर रही थी ।
जो रीता था खप्पर महाकालिका का
उसे शत्रु के रक्त से भर रही थी ॥

दिखाई पड़ा सामने दुष्ट योकर
जो छिपकर चलाता सनासन था गोली।
पलक मारते उसके सर के रुधिर से
चमकती दुधारी थी रानी ने धोली ॥

भगी शत्रु सेना यही शब्द कहती,
कि रानी नहीं है, है यम की निशानी।
हृदय से चली जा रही थी रवाना,
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

यों जीवन की बाजी लगाकर भवानी
प्रबल वाहिनी पर विजय पा गई थी।
मगन था गगन, जग उठी भूमि प्यारी,
धरा से गगन तक प्रभा छा गई थी ॥

बिना अन्न जल के निशा भर में वह पथ
था रानी ने सौ मील का तय किया था।
विहग-वृन्द गाते विजय गान सुन्दर
मलय वायु ने स्वेद कण हर लिया था ॥

प्रखर वात में भी सतत् जल रही थी,
अमर शौर्य की जगमगाती निशानी।
हृदय से चली जा रही थी रवानी,
किले से चली जा रही थी भवानी ॥



सत्रहवीं झंकार

तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

उधर व्योम में मंत्रणा हो रही थी,
इधर राजता हर्ष का था तराना।
यही है समय का सुनहला सवेरा,
कि पल में हँसाना व पल में रुलाना ॥

नहीं जी सकोगे, जगत में है खाई
जिसे तुम समझते हो वैभव का पलना।
नहीं जानते हो समय की मणी में
छिपा काल है काटता रूप दलना ॥

यही सोचती थी प्रवासिन वह कोरिन,
लगा हूँ गगन भाल में मैं निशानी ।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

निरन्तर भवन से खड़ी सोचती थी,
बचा लूँ भवानी का अनमोल जीवन।
पिता हैं पड़े रुग्ण शैय्या प चिन्तित
दुखी अशान्त भारत को कब सजीवन ॥

बजे दुन्दुभी आर्य-जननी के घर में,
जले दीप, विहँसे चमाचम दिवाली।
तिमिर के हृदय पर गिरे वज्र क्षण में
प्रभा शान्ति राजे धरा पर निराली॥

मिले अंशुमाली को गङ्गा का शीतल
महापुण्यदायक-सुगति धाम पानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

गगन रो रहा है, धरा रो रही है,
मलय वायु कहता व्यथा भार चलकर।
हृदय काँपता है अचल का थराथर
तिमिर राजता है कुसुम को मसलकर॥

नहीं खुल रहा है लताओं का अंचल,
नहीं डोलते हैं भ्रमर फूल-दल पर।
किसे मैं सुनाऊँ समय की कहानी,
करुण गीत गाती निशा भूमि-तल पर।

बहा आ रहा मातृभू के दृगों से
व्यथा भार से क्लान्त अविराम पानी
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

उठा ली करों में चमाचम भुजंगिन
चमकने लगा पार्श्व में धर्म प्यारा।
बनायी वही वेष रानी का जो था
समर में बना वज्र का-सा निराला॥

उछलकर चढ़ी वाजि पर जय मनाती,
मुकाती गगन को धरा पर विहँसकर ।
कँपाती शिखर को, खिलाती गरल को
अमर दल की छाती कँपाती डपटकर ॥

मुके शत्रु कोरिन पे रानी समझकर
पवन के हृदय में जगी रण-रवाना ।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

इधर था विजय, क्षण उधर था विनय, क्षण
चमकते थे गोले प्रबल-वाहिनी में ।
उधर व्योम में कड़कड़ाती थी बिजली,
यहाँ व्यग्रता थी अलख वाहिनी में ॥

धरा का वसन खून से रँग गया था
झुलाती जिसे थी प्रखर खड्ग ज्वाला
भरा जा रहा था कपालों का खप्पर,
परो थी रही शत्रु की मुण्ड माला ॥

निशा में थिरक नाचती थी चिराग्नि
गगन से चला आ रहा था मचाना ।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रहा था समर का फसाना ॥

धरा पर कभी क्या हुआ है य सम्भव
अकेला चना भाड़ का फोड़ता है ।
नहीं यह कभी भी सुना ही गया है,
अकेला ही लोहा शिला तोड़ता है ॥

भला कब तलक एक मरकारी लड़ती
प्रबल शत्रु की बाढ़ सी वाहिनी से।
पकड़ ली गई जीते जी वह समर में
गरजती हुई शत्रु की वाहिनी से॥

मनाई गई अरि-शिविर में दिवाली
पकड़ ली गई आज झाँसी की रानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

थ सैनिक सभी बात करते यही थे,
धरा पर वे फूले नहीं थे समाते।
कभी थे हवा में वे टोपी उड़ाते,
कभी नाचकर थे विजय-गीत गाते॥

न रिपु-दल तनिक जान पाया अभी तक
कि रानी नहीं है, है कोरिन भवानी।
जो रानी का जीवन बचाने में हँसकर
चली थी चढ़ाने उमड़ती जवानी॥

छिपे आड़ से दूल्हाजू ने बताया
कि कोरिन है, समझो न झाँसी की रानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

लगी आग कोरिन के तन में यह सुनकर
लगी एक गोली सी दुल्हा की बोली।
फड़कने लगे ओठ, जल-सी उठी वह
भरी त्याग की सौम्य अनमोल झोली॥

कहने लगी, नीच ! मर जा इसी क्षण
धरा के लिये भार सा तू बना है।
नहीं जानता आर्य-धरणी के ऊपर
सतत धर्म का मेघ छाया घना है ॥

तू भय से अरे चेत कुल के कलंकी !
मिलेगा तुझे चक्षु से गाढ़ पानी ।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

बनी यह रही मास भर बन्दिनी थी,
प्रबल शत्रु के काल घर से शिविर में ।
सुनाता उसे था पवन हा अकेला
अमर शौर्य का गान सूने तिमिर में ॥

पुन मुक्त कर दी गई यह शिविर से,
बढ़ा शत्रु दल कालपी को सुपलन ।
बढ़ा आ रहा हो धरा पर गरुड़ ज्यों
महासर्प को तीव्र गति में निगलने ॥

यही गीत गाती चली जा रही थी
समर मेदिनी पर है झाँसी की रानी ।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

अठारहवीं हुंकार

माँ महल की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी।

सो गये कितने विभव हैं
राजमद की साधना में।
हो गये कितने निधन हैं
मोह की आराधना में॥

लाल कितने लाल से जो
माथ की लाली छिपाकर,
सो गये लघु-धूल कण में
यश के दीपक बुझाकर॥

आज इसने प्राण-सुमना की अतुल रुचि-रचना पर
है नियति का गूँजता मायामयी यह री कहानी।
माँ महल की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी।

बह रहा था अश्रु प्रतिपल
सजल नगरी के दृगों से।
झर रहा था फूल झर झर
रात्रि के चपल रंगों में॥

मार दी थी टाप जिसने
इस भूधर के शिखर पर।
आज यह सूना पड़ा
घूमता है मन ध्वनि पर॥

जब हुआ विधि वाम मुझसे आज ! नाता तोड़ते हो,
कौन अब हँसकर जगायेगा पवन में भी रवानी ?
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों का अभी मायामयी यह री जवानी !

एक ही हुङ्कार पर भी
चल पड़ी कितनी कटारें ।
एक ही ललकार पर थी
खिंच पड़ी कितनी दुधारें ॥

श्याम का वरदान सुरसरि
सम धरा पर चल पड़ा था।
वीर रस साकार होकर
अरि दमन हित चल पड़ा था॥

हे प्रभो ! इस पुण्य तीर्थ पवित्र व्रतमय यात्रियों को
साधना की क्या सुनायी शान्तिमय शुचिता कहानी !
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी

हे तुरग ! न साथ छोड़ो,
विपिन में आयी हुई हूँ।
आज दुर्दिन के धनों से
त्रस्त ठुकराई हुइ हूँ ॥
साथ जो तुम छोड़ दोगे।
प्राण मैं भी छोड़ दूँगी।
वंश के गुरु-मन्त्र से मैं
आज नाता तोड़ लूँगी ॥

बालि का सिर गोद में था, रो रही थी विकल रानी,
साथ ही दृग के दृगों से बह रहा था रुधिर-पानी।
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी।

विजन वन का शून्य अन्तर
एक शब्द न बोलता था।
पवन दुख से था विकल कुछ
लड़खड़ाता डोलता था॥
दो हृदय ये परम - व्याकुल
नाचती सम्मुख निराशा।
बालि का जीवन बुझाती
थी सतत गहरी पिपासा॥

क्या प्रगट करता भला यह रुग्ण शैय्या पर पड़ा हृय
चाहिये मुझको भवानी! अन्त में दो घूँट पानी!
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रहा है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

रो रही थी बैठ रानी,
प्राण साथी जा रहा था।
स्वामि-भक्ति प्रतीक निश्चल
भूमि रज पर सो रहा था॥
प्राण रक्षक मौन हो
साकार जग से जा रहा था।
व्योम में धूमिल निराशा
अभ्र छाया जा रहा था॥

बाजि का मुँह चूमकर, रानी बिलख अब कह रही थी
हे सखे! मुझको दिखा दो कीर्ति की उज्ज्वल निशानी।
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

चल बसा योद्धा जगत से
रह गई रानी बिलखती।
चल बसी वह भक्ति जग से
रह गई रानी कलपती॥

विश्व का नाता यही है
देख लो नश्वर चराचर।
काल ही है मुक्ति का नव
द्वार मत काँपो थराथर॥

इसलिए धन से न तौलो कीर्ति का तुम भार मानव!
रह धरा पर अन्त में जाती यही उज्ज्वल निशानी।
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

अब भला मैं क्या कहूँ
इतनी बहन विधवा बनाकर?
क्या करूँ इतने घरों के
वीर पुत्रों को गँवाकर?

क्या कहूँगी पूर्वजों से
वंश के दीपक बुझाकर?
क्या करूँगी अर्चना मैं
पुष्प से डाली सजाकर?

इसलिए हे बाल साथी ! नींद से उठ बैठ जाओ,
मैं तनिक धो लूँ तुम्हारे पाँव को ले गङ्गपानी।
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

आज मैं किससे कहूँ यह
टाप से भू को हिला दो।
आज मैं किससे कहूँ फिर
व्योम को भू से मिला दो।

इस वज्र सी तलवार का
पतवार मैं किसको बनाऊँ।
आज किस गति-सूत्र में मैं
शत्रु सिर माला बनाऊँ।

हे सरो मम बाल रक्षक! ये समस्यायें सुभाकर
आँख खोलो अब भला कैसे बचेगा हिन्दुस्थानी।
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी।

अश्रुमय निर्झर कठिनतम
उपल के उर को दलाकर,
कह रहा था करुण-स्वर में
सित विमल धारा हिलाकर॥

"शान्त हो, जग में सदा ही
पथ दिखाता है समय ही।
व्योम से भू पर गिराकर
फिर उठाता है समय ही॥

इसलिए नव कल्पना की डोर पर पयोग का
पलना बनाकर झूल आओ हे जगद्वन्द्या भवानी !"
माँ-बहन की माँग का सिंदूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों को अभी मायामयी यह री जवानी !

जग गई रानी पुनः तब
मोह का परदा हटाकर ॥
जग उठा नव प्रात क्षण में
विश्व का घूँघट उठाकर ॥
भूमि के शुचि गर्भ में तब
बालि को सुख से सुलाकर,
बाल साथी पर करों से
सुमन की झोली चढ़ाकर,

हो गई रानी खड़ी, तन-रोम रोम फड़क उठा फिर,
चमचमा क्षण में उठी विद्युत सदृश थी असि पुरानी।
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों को अभी मायामयी यह री जवानी !



उन्नीसवीं हुंकार

जग गई वसुन्धरा कँपी अगाध कालिमा ।
राजने लगी प्रभात की नवीन लालिमा ॥
जग पड़े यहाँ कमल विचित्र राजने लगे ।
मत्त भृंग पुष्प-कोश शीघ्र त्यागने लगे ॥
आरती उतारने निकल पड़ीं कुमारियाँ ।
फूल से सजी चमक उठीं नवीन-थालियाँ ॥
वल्लरी प्रभात में प्रमत्त झूमने लगी।
प्रात की सुहागिनी उमंग चूमने लगी ॥
लोल-स्वप्न ले चला अनन्त तारकावली ।
त्यागने लगी वनस्थली निहारिकावली ॥
गूँजने लगा निगम-सुमन्त्र आर्य धाम में ।
गूँजने लगा विहंग-गान ग्राम ग्राम में ॥
भव्य कालपी नगर कुबेर के विमान सा ।
घूम ले अनन्त को महा विचित्र लालसा ॥
ऋद्धियाँ मना रहीं युगान्त तक मिला रहूँ ।
सिद्धियाँ पढ़ा रहीं प्रसून सा खिला रहूँ ॥
आज भी पतंगजा कथा पुनीत कह रही ।
काल के कराल गाल में विपत्ति सह रही ॥
एक था समय कि फूल सा खिला प्रकाश था ।
प्रेम का निवास और शांति का विकास था ॥

शुद्ध शान्ति भाव में स्वतन्त्रता विराजती ।
एक ही पुकार पर सहस्त्र शीश माँजती ॥
कह रही अनन्त से निदेश मातृ भूमि का ।
एक हो रचो नवीन प्रेमपूर्ण भूमिका ॥

इस समय विशाल दुर्ग का हृदय विहँस पड़ा ।
इस समय स्वजाति का पुनीत स्वप्न हँस पड़ा ॥
जग पड़ी स्वधर्म की दबी युगान्त वन्दना ।
इष्ट-मातृ भूमि की जगी स्वतन्त्र कल्पना ॥

शान्त नील वर्ण पर नवीन रंग चढ़ चला ।
धूल का पहाड़ व्योम चुम्बनार्थ बढ़ चला ॥
काँपने लगी मही न किन्तु भूमि डोल था ।
धड़धड़ा उठे दिगन्त वज्र-सा हिंडोल था ॥

चल पड़े तुरग वायु चीर कर कतार से ।
चल पड़े सवार भानु-रश्मि की बहार से ॥
हिनहिना उठे तुरंग मेदिनी मचल पड़ी ।
विन्ध्य प्रान्त छोड़ विन्ध्यवासिनी निकल पड़ी ॥

राजमार्ग पर अपार भीड़ भी उमड़ चली ।
एक साथ ही सहस्त्र नारियाँ निकल पड़ें ॥
देखने स्वजाति की बनी विशाल वाहिनी ।
देखने जवानियाँ कटार धार सी तनी ॥

दिव्य दुर्ग सामने रुकी प्रचण्ड वाहिनी ।
ज्यों अथाह सिन्धु में मिली सुनीर वाहिनी ॥
दे दिया सँदेश शीघ्र इष्ट द्वारपाल ने ।
नम्र वीर भाव से किया प्रणाम राव ने ॥

हो कृतार्थ राष्ट्र से मिली प्रसन्न चण्डिका।
ज्यों विशाल विघ्न वीर हो खड़ी करालिका॥
फिर बनी सुयोजना नवीन देश क्रान्ति की।
जग गई सुकल्पना महान् देश शान्ति का॥

फरफरा उठी ध्वजा स्वबंधु का मिलन हुआ।
थरथरा उठी प्रथा सुशक्ति का मिलन हुआ॥
जग उठी प्रजा नवीन भाव मुस्करा उठे।
एक साथ ही सहस्र ओठ फरफरा उठे॥

जग उठे स्वजाति के दबे प्रसो जवान भी।
जग उठे स्वतंत्र आर्य धाम के निशान भी॥
जग उठा पवित्र आर्य-रक्त-मुण्ड-दान भी।
जग उठा पवित्र रामराज्य का विधान भी॥

जग पड़े अगस्त्य वीर सिन्धु काँपने लगा।
जग उठा नगेश शृङ्ग व्योम नापने लगा॥
जग उठे प्रताप वीर गान गूँजने लगा।
जग उठे शिवा स्वधर्म भाव झूमने लगा॥

जग पड़ा स्वदेश प्रेम तरु, पवन, पहाड़ में।
जग उठी नवीन शक्ति आर्य हाड़ हाड़ में॥
जग पड़ा स्वतंत्र शब्द सिंह की दहाड़ से।
जग पड़ा त्रिपुण्ड ध्वनि मन्त्र की पुकार से॥
सिंह-नाद कर विहँस बढ़ो स्वदेश प्रेमियो।
मुण्ड-माल हाथ ले बढ़ो स्वदेश सेवियो।
मर्त्य देह के लिए छुटे न सत्य साधना।
तुम बढ़ो स्वधातु को सुभग्न-दण्ड सा बना॥

सामने पहाड़ शृंग ! धूल-कण ! समझ चढ़ो।
सामने कटार धार फूल-सा समझ बढ़ो॥
काल के कराल वक्ष पर सहर्ष चढ़ चलो।
अग्नि मार्ग चाँदनी बिछी विचार बढ़ चलो॥

सप्त सिंधु-गर्जना सहर्ष गान मान लो।
देवलोक भूमि है, कटार-वज्र जान लो॥
चण्ड वायु सम प्रसन्न शत्रु पर चढ़े चलो।
रुद्र से प्रबल लिए परार्थ पर बढ़े चलो॥

रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा बनो, बढ़ो।
ठोक दे नगेन्द्र दो प्रचण्ड वज्र सा चढ़ो॥
सामने अनीति हो कड़ी कड़ी मरोड़ दो।
सामने कुरीति को मृणालि-तुल्य तोड़ दो॥

सत्य मार्ग पर चलो, असत्य का विनाश हो।
नम्र भाव जग पड़े स्वधर्म का प्रकाश हो॥
शून्य अंतरिक्ष में चढ़े ध्वजा स्वदेश की।
सामने झुके ध्वजा महान देश-देश की॥
कर्म वीर हो प्रसन्न कर्म-क्षेत्र में बढ़ो।
धर्म-धीर हो प्रसन्न धर्म क्षेत्र में चढ़ो॥
त्याग हो महान बंधु ! साधना महान हो।
शीश हो सहस्त्र किन्तु एक प्राण ज्ञान हो॥
हाथ में कटार हो, सुबुद्धि हो, विचार हो
नाम हो पृथक परंतु एक देश प्यार हो॥
एक ही सुजाति है यही सुलक्ष्य मान लो।
दुःखि-भीति-नाश-अथ तुम कटार-ज्ञान लो॥

झुक गये जवान ! तो स्वदेश आज झुक गया।
रुक गये जवान ! तो स्वदेश आज रुक गया॥
रक्त दिये सशक्त तो स्वधीर मान धुल गया।
देश का विजय किशोर ! शून्य बीच धुल गया॥

इसलिये महान यश हेतु विलास त्याग दो।
नाशवान है सुरग मोह पाश त्याग दो॥
एक हो बढ़ो जयी ! सुकीर्ति हो महान है।
आन देश बन्धुओं ! स्वधर्म ही स्वमान है॥

कालपी नगर के कण-कण में
गूँजा स्वदेश का मधुर गान।
रानी के मत्र फूकते ही
मुर्दा में भी आ गई जान॥

लेकर कर में चमचम कृपाण
दमदमा उठे सब नौजवान।
सुनकर वीरों का अटल-शपथ
थरथरा उठा था आसमान॥

वन्दे जननी हे जगदम्बे
तुम पर अपण य तुच्छ प्राण।
आज़ाद भूमि पर हो माता
गाऊँगा तेरा यशोगान॥

सामने पहाड़ शृंग धूल-कण समझ चढ़ो।
सामने कटार धार फूल सा समझ बढ़ो॥
काल के कराल वक्ष पर सहर्ष चढ़ चलो।
अग्नि मार्ग चाँदनी बिछी विचार बढ़ चलो॥

सप्त सिन्धु-गर्जना सहर्ष गान मान लो।
देवलोक भूमि है, कटार वस्त्र जान लो॥
चण्ड-वायु सम प्रसन्न शत्रु पर बढ़े चलो।
रुद्र से प्रबल लिए परार्थ पर बढ़े चलो॥

रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा बनो, बढ़ो।
ठोक दे नगेन्द्र तो प्रचण्ड वज्र सा बढ़ो॥
सामने अनीति हो कड़ी कड़ी मरोड़ दो।
सामने कुरीति को मृणालि-तुल्य तोड़ दो॥

सत्य मार्ग पर चलो, असत्य का विनाश हो।
नम्र भाव जग पड़े स्वधर्म का प्रकाश हो॥
शून्य अंतरिक्ष में चढ़े ध्वजा स्वदेश की।
सामने झुके ध्वजा महान देश-देश की॥
कर्म वीर हो प्रसन्न कर्म क्षेत्र में बढ़ो।
धर्म- वीर हो प्रसन्न धर्म क्षेत्र में बढ़ो॥
त्याग हो महान बन्धु ! भावना महान हो।
शीश हो सहस्र किन्तु एक प्राण ज्ञान हो॥

हाथ में कटार हो, सुबुद्धि हो, विचार हो
नाम हो पृथक परन्तु एक देश प्यार हो॥
एक ही सुजाति है यही सुलक्ष्य मान लो।
इति-भीति-नाश अथ तुम कटार तान लो॥

झुक गये जवान ! तो स्वदेश भाल झुक गया !
रुक गये जवान ! तो स्वदेश आज रुक गया !!
रक्त दिये छलाङ्ग तो स्वभीर-मान धुल गया !
देश का विजय किशोर ! शून्य बीच घुल गया !!

इसलिये महान यह है विलास त्याग दो !
नाशवान है सुरग मोह पाश त्याग दो !!
एक हो चढ़ो जवां ! सुकीर्ति हो महान है !
आज देश बन्धुओं ! स्वधर्म ही समान है !!

कालपी नगर के कण-कण में
गूँजा स्वदेश का मधुर गान !
रानी के मन पूछते ही
मुर्दों में भी आ गई जान !!

लेकर कर में चमचम कृपाण
दमदमा उठे सब नौजवान !
सुनकर वीरों का अटल-शपथ
थरथरा उठा था आसमान !!

[illegible] !
[illegible] !
[illegible] !
[illegible] !!

इतना कहकर वीरों ने की
जय-घोष महाकाली की जय।
रण में मतवाली मर्दानी
रानी की जय, रानी की जय॥

बीसवीं हुंकार

रानी का रसमय वीर भाव
कर पान वीर मर्दानों ने ।
मूँछों पर फेरा हाथ शीघ्र
हिन्दू-कुल रत्न जवानों ने ॥

अम्बर से मिले सन्देश इन्हें
हँस प्राण-प्रसून चढ़ाने का ।
रण की गंगा में नहा नहा
शोणित का अर्घ्य चढ़ाने का ॥

फिर सेतु बनाकर शवों का
अरि को उस पार लगाने का ।
नभ की छाती पर चढ़, फर फर
यह वीर ध्वजा फहराने का ॥

झुककर वीरों ने मौन - मौन
अभिवादन किया भवानी का ।
आगे आगे रानी घोड़ा
था झाँसी की महरानी का ॥

गढ़ जीत मुरारी का अरि दल
बस शीघ्र कोंच की ओर चला ।
था आज - धरा की छाती पर
दानवता का अभिमान चढ़ा ॥

अब यही कालपी का रण है
वीरों की शक्ति परीक्षा का।
हिन्दू-कुल के अभिमान मान
पावन दुर्जेय-समीक्षा का॥

अब यहीं दिखानी है अपनी
पौरुष-रणनीति कला लड़कर।
है मातृ-भूमि की पूजा अब
करनी कृपाण पर चढ़ चढ़कर॥

इस बीच आ गई रिपु-सेना,
रण-बाजे बजे जवानों के।
बाँहें फड़कीं, बिजली चमकी,
रद कड़क उठे मर्दानों के॥

फिर दोनों दल के वीरों ने
ललकारा निज प्रतिपक्षी को।
भिड़ गए वीर हुंकृत रव से
लखकर तब वहाँ विपक्षी को॥

असि फिरी, उड़ा सिर अम्बर में
गिर पा कबन्ध महीतल पर।
जिस भाँति महातरु रव करता
सो जाता है अवनी-तल पर॥

तोपों का भैरव रव नभ की
छाती विदीर्ण कर गरज पड़ा॥
चमका, छटका फिर रण में ही
सावन के घन सम बरस पड़ा॥

हो गया व्योम में धुआँ धुआँ
तलवार चमकती थी चमचम।
ज्यों महाप्रलय की घटा-बीच
चपला करती हो चम, चम, चम॥

बुन्देलखण्ड के नौनवान
रात शत्रु-बीच हो एक लड़े।
ज्यों नीर-वाहिनी चीर रहे
रात शिला-खण्ड जल-बीच खड़े॥

थी रानी का तलवार सतत
अरि के कण्ठों को काट रही।
नन्दन समान इस धरती से
थी वह उपवन को छाँट रही॥

उर में भजती जय-जय काली
असि से अरि-दल संहार रही।
रिपु प्राणों का दीपक लेकर
नीराजन मौन उतार रही॥

शिव-दूती से हँस-हँस कहती
शोणित से प्यास बुझा लेना।
जिसका जो ऋण हो तनिक शेष
रण में ही उसे चुका लेना॥

शिव जी की ग्रीवा में लटका
हा गए पुराना माला थी।
इसलिए पिरोती थी रानी
अरि सिर की नूतन माला था॥

इतने से था सन्तोष नहीं
उस समर भवानी रानी को ।
इसलिये दूसरी असि खींची
देखा उसके नव पानी को ॥

लेकर दोनों कर में कृपाण
वे लगीं दिखाने युद्ध-कला ।
उस रण-मतवाली के सम्मुख
टिक सकता था अब कौन भला ?

दाँतों से ले पकड़ी लगाम
अम्बर में उड़ता घोड़ा था ।
उस वायु विदारक घोड़े के
सिर पर न तड़पता कोड़ा था ॥

वह कभी युद्ध के बीच कभी
इस पार, कभी उस पार गया ।
उसकी पुतली के फिरते ही
अरि-दल पर लकवा मार गया ॥

तोपों के गोलों की भी वह
करता था कुछ परवाह नहीं ।
वह दौड़ रहा था तेज बीच
मिलता समीर को राह नहीं ॥

अम्बर कहता रानी की जय
भूतल कहता रानी की जय ।
प्रतिपल यह रव था गूँज रहा
रानी की जय, रानी की जय ॥

पकड़ो रानी को कहते ही
सिर धड़ से अलग छटकता था ॥
'घोड़ा आया' यह कहते ही
हय सिर पर टाप पटकता था ॥

मुँह खुला अगर ललकारों में
वो खुला सदा रह जाता था ।
दृग निर्निमेष ही लिए शोरा
कटकर भू पर सो जाता था ॥

कालपी नगर के नौजवान
रिपु-दल में घुसते जाते थे ।
शोणित से रँगे समीरण में
वे खड्ग लिए लहराते थे ॥

लेकिन अनुशासन था ढीला
सब अपने मन के थे स्वतन्त्र ।
रानी का भी उनके ऊपर
इसलिए न चलता एक मंत्र ॥

इस हेतु आ गया वीरों पर
क्षण में ही दुर्दिन का फेरा ।
अरि-रूपी अन्धक का क्षण में
घिर गया सामने नव घेरा ॥

रिपु-दल की तोपें गरज-गरज
थीं लगी उगलने आग प्रबल ।
जननी के दीपक पर सपूत
क्षण भस्म लगे होने जल-जल ॥

इस बीच व्यूह को त्वरित चीर
रानी पहुँची रणधीरों में ।
नव मंत्र फूँकने लगी शीघ्र
कालपी नगर के वीरों में ॥

क्या देख रहे हो हे वीरों !
रणभूमि नहीं सोने को है ।
भारत जननी का पद पंकज
अरि शोणित से धोने को है ॥

इसलिये बढ़ो, चिन्ता न करो
रंचक इन नश्वर प्राणों को ।
वैरी की छाती पर गरजो
कुछ भीति न हो अरि-बाणों को ॥

अरि की तोपों के मुँह में ही
विकराल बाड़ दो अभी डाल ।
अपनी सेना के सम्मुख अब
रुक जाये आकर महाकाल ॥

दूना उत्साह बढ़ा फिर से
जननी के वीर सपूतों में ।
जागा वह पिछला वीर भाव
कासी के भीषण दूतों में ॥

फिर भभक उठी क्रोधाग्नि शीघ्र
उन क्षत्रिय वीर कुमारों में ।
वे कूद पड़े अरि-तोपों पे
दुर्गम गोलों की मारों में ॥

मच गया प्रलय अरि के दल में
बुन्देलों की हुंकारों से।
छूटे शोणित के फौव्वारे
रानी की असि के वारों से॥

पट गई मेदिनी लाशों से,
आकाश भर गया प्राणों से।
हो गया पवन का तन जर्जर
गोली, गोलों से बाणों से॥

पत्तदल सम कंपी दिशायें भी
रणधीरों की ललकारों से।
तमतमा उठी रवि की किरणें
वीरों के शर के वारों से॥

डर गया रोज यह देख नया
रण नाटक का पट परिवर्तन।
था ममत्यस धड़का उठा
देखा निज दल का अधःपतन॥

तब शोकाकुल सिर पर कर रख
वह लगा सोचने मार्ग नया।
उसकी इस दीन-दशा पर भी
आई विजया को बड़ी दया॥

इसलिए रोज के पास पहुँच
वह लगी बताने कुछ नई।
इस बीच वहाँ आया छुमटे
लेकर विशाल वाहिनी नई॥

हँस पड़ा रोष, खिलखिल विजया
वह टूट पड़ा रणधीरों पर।
तोपें भी लगीं उगलने विष
बुन्देलखण्ड के वीरों पर॥

अब रही न जय की आशा थी
जननी के वीर सपूतों को।
मिल गई विजय फिर अनायास
निमन अधम के दूतों को॥

फिर भी रानी को आशा थी
संग्राम विजय कर लेने की।
खप्परवाली के खप्पर को
अरि शोणित से भर देने की॥

पर वह भी क्या कर सकती थी
घावों से तन भी था जर्जर।
घोड़े के तन से झरता था
शोणित का निर्झर, झर, झर, झर॥

बच गए उँगलियों पर गिनने
भर के ही भारत नौजवान।
उस ओर गरजता था अरि-दल
प्रतिपल प्रलयंकर घन समान॥

नव विजय गर्व से अरि झण्डा
गढ़-मस्तक पर फरफरा उठा
मेदिनी हिली, हिल पड़ा अचल
बूढ़ा भारत थरथरा उठा॥

पश्चिम से रोती चिल्लाती
सन्ध्या चल पड़ी भवन से थी।
उन सोते हुए सपूतों को
ढक रही करुण अंचल से थी॥

इक्कीसवीं हुंकार

अभी उषा की वेणी में थी
गुँथा हुआ मोती का हार।
लेकर रवि कर वह कूँची
तममय आँगन रही बुहार ॥

अरुण कपोलों की लाली में
चमक रहा था चमचम हार ।
सत्य और शिव सुन्दर की नव
विहँस रही थी छवि साकार ॥

कलियाँ किसलय की थाली में
लिए हुए पूजन-उपहार ।
देख रही थी सजल नेत्र से
प्रभु का तम से धूमिल द्वार ॥

पवन दे रहा था जल-थल पर
घूम-घूमकर यह सन्देश ।
पूजा की बेला है त्यागो
नीड़, सजाओ पावन-वेश ॥

सुना रहे थे अलिगण सबको
जगदीश्वर का शुचि-गुन गान ।
लीन हो चला था दल दल पर
सगना सौरभ का मन-ध्यान ॥

जगा ग्वालियरगढ़ निद्रा से
जगी पताका नभ में लाल ।
रानी भी प्रभु का पूजन कर
लेकर सखियों को तत्काल ॥

चली देखने गढ को चहुँदिशि
विकट-पहाड़ी तममय कोट ।
जहाँ बनाई जा सकती थी
रण के लिये सुरक्षित ओट ।

तीन ओर से दुर्ग सुशोभित
भरता था भूधर की गोद ।
चौथी ओर सोनरेखा का
नाला बहता था सविनोद ॥

उसके पार गहन जंगल था
उसमें हँसती दिन में रात ।
बिछे हुए थे अवनी तल पर
शैय्या सम कुछ सूखे पात ॥

कहीं झाड़ियों के काँटों में
हँसते थे किसलय के गात।
जहाँ पहुँचने में डरता था
सरस सलोना स्वर्णिम प्रात ॥

देख वनाली की स्वतंत्रता,
सुनकर निर्झर का कल-गान ।
योगी सा लग गया शीघ्र ही
रानी का क्षण भर को ध्यान ॥

लगी सोचने मन ही मन में
कैसा है वन का व्यवधान ॥
शान्त रूप से जड़ जंगम का
निश्छल है आदान प्रदान ॥

यह स्वतन्त्रता जड़ जंगम में
मानव में भीषण तूफान ।
हत्या लूट स्वार्थपरता का
गरज रहा है सिन्धु महान ॥

अपनी ही जड़ के थाले में
तरु-तरु में ऐसा सन्तोष ।
रवि के उदय अस्त तक भू पर
मानव में है व्याप्त असन्तोष ॥

रवि का जीवनमय प्रकाश है
अवनी का रसमय आहार ।
चला रहा वन के तरु-तरु के
जीवन का है नित्य व्यापार ॥

इतने हो पर है प्रसन्न सब
सबमें है अपना उत्थान ।
सब में है निज स्वत्व-चेतना,
अपने गौरव का सम्मान ॥

अपनी जन्मभूमि की रक्षा
करने में है निशि-दिन ध्यान ।
यहाँ न कोई शोषक ही है
और न कोई शोषित दीन ॥

अपनी शीतल छाया से हैं
करते माँ का शीतल गात ।
और खिलाते मातृभूमि को
देकर तन का प्यारा पात ॥

घाम-शीत को तरुवर हँसकर
लेते हैं मस्तक पर रोक ।
अपने ही कोमल तन पर हैं
लेते वर्षा शर भी रोक ॥

ये द्रुम-दल हैं सच्चे सेवक
करते जन-जन का उपकार ।
देकर अपने पुष्प-प्राण भी
करते माता का शृङ्गार ॥

मानव तो है परम स्वार्थी
भूल गया अब माँ का ध्यान।
थोड़े से धन के पीछे वह
सहता जग में कष्ट महान ॥

उसे तनिक भी ज्ञान नहीं यह
माता है रत्नों की खान ।
जिसकी सेवा करने में ही
सब कुछ पाना है आसान ॥

इसी भूमि में ही है जन्मे
गौतम-वाल्मीकि मतिमान ॥
और इसी वन-तरु के नीचे
जागा पावन – तत्त्व – ज्ञान ॥

फिर अलियों की कल-कल ध्वनि से
टूटा रानी का वह ध्यान।
बढ़ी शीघ्र उस ओर जहाँ था
मृदु द्रुममय दूधा-मैदान॥

जिस पर की बिखरी सुख को
रवि ने हँस कर लिया बटोर।
था जिसके कुछ दूर विहँसता
हरा भरा जंगल का छोर॥

उसी वनस्थल के प्रांगण में
बनी हुई थी कुटिया एक।
जिसके चारों ओर राजता
संस्कृति का था विमल विवेक।

सघन द्रुमों की छाया में था
शीतलता का सुन्दर धाम।
जहाँ बैठकर मृग पद्दरि संग
करते थे सुख से आराम॥

रयन संग वट की शाखा पर
बैठ विहग थे गाते गान।
बिचर रहे थे सब धरा पर
मोर नाच कर देते तान॥

पवन से लटी हुई शाखाएं
रहीं भूमि को भुककर चूम।
सौरभ पुष्पों से छन-छनकर
रहा धरा पर मृदु-शिशि घूम॥

शान्त – उटज के हरित – द्वार पर
फूलों से हँसती थी घास।
जिस पर काली मृगछाला पर
ध्यान भग्न थे गंगादास॥

देख सौम्य – तेजोमय आनन
उर में जागा ऐसा ज्ञान।
क्या महर्षि वशिष्ट स्वय तो
नहीं लगाए बैठे ध्यान?

रानी प्यासी सखियों को ले
पहुँची शान्त – कुटी के पास।
उसी समय मृगछाला पर से
उठे मुदित मन गंगादास॥

उस यतीन्द्र ने मुड़कर देखा
खड़ी भवानी थी साकार।
श्वेत वाजि था पार्श्व – भूमि पर,
कटि से लटकी थी तलवार॥

पहुँच गया महर्षि-चरण पर
रानी का कर-पल्लव लाल।
आशीर्वचन सुनाता विहँसा
त्रय – सखियों का शीतल भाल॥

पुनः शान्त कर तरु-छाया में
प्रिय सखियों को लेकर साथ।
मुदित भाव से बोली रानी
आज हुई मैं ईश। सनाथ"॥

चमक उठा तेजोमय आनन
विहँस उठा प्रज्ञा का धाम।
"कहो भवानी! स्पष्ट बताओ
मेरे योग्य यहाँ हो काम॥"

बोली रानी माथ नवाकर
"प्रभुवर! लेना है शुद्ध ज्ञान।
जिससे मैं कर सकूँ शक्ति भर
जननी जन्मभूमि का मान॥

"धन्य! मैंने तो जीवन भर
किया इसी का ही गुणगान।
तो मुझ में है कौन शक्ति जो
दे सकता हूँ नूतन ज्ञान॥

फिर भी यथाशक्ति होवेगा
इस नश्वर तन से सम्मान।
थोड़े से जीवन में जो कुछ
हो जाय है वही महान॥

पुनः विहँसकर बोली रानी
"हे प्रभुवर हे पुरुष-ललाम।
सद्विचार, आलोक विश्व के
ज्ञानवान वैराग्य सुधाम।

अब स्वराज्य कैसे पावेगा
आतताईमय भारत देश।
अब कैसे चमकेगा इसका
चमचम करता गगन धरा।

व्यंग्य भाव में बोले ऋषिवर
कैसे होगा इसका वेश?
"इसका उत्तर दे सकते हैं
बस स्वदेश के वीर नरेश॥"

"नहीं प्रभो! यह केवल भ्रम है
रहा न अब ऐसा व्यवहार।
अब स्वदेश के राजाओं में
रहा न वैसा शुद्ध विचार॥

इसलिये प्रभु की सेवा में
हुये उपस्थित हैं ये प्राण।
अब केवल मुझ को मिल सकता
इस कुटिया से ही है त्राण॥"

हुई शान्त मुद्रा त्यागी की
गूँज उठा क्षण में वरदान।
"जैसे अब तक होता आया
वैसे ही होगा सम्मान॥"

बात न समझी कुछ यह रानी
जगी व्यग्रता की फिर रेख।
सरल भाव म लगे सुनाने
रानी की चिंता को देख॥

अम्बे! बात न समझी हो तो
फिर से सुन लो देकर ध्यान।
स्वतंत्रता दे सकता केवल
त्याग, तपस्या या बलिदान॥

जैसे गर्व भरा जाता है,
पूर्ण की जाती है नींव।
वैसे इस स्वातन्त्र्य नींव को
भर सकते हैं नश्वर जीव॥

जब होवेगा हट विपद के
आँधी में तप तपकर प्राण।
तब स्वातन्त्र्य भवन का होगा
भूतल पर फिर से निर्माण॥

समय चक्र को पुनः नचावे
वीर सपूतों का नय त्याग।
जगे उच्च भवनों से लेकर
झोपड़ियों में नवल-विराग॥

वर्ण वर्ण का भाव मिटाकर
गायें फिर से जय का गान।
रन्विश्व के सत्यासन पर
जागे फिर दधीचि का ज्ञान॥

सबके उर में एक कहानी
रमती रहे सतत अविराम।
एक देश है, एक धरा है
और एक है सबका धाम॥"

रानी ने फिर कहा विहँसकर
"हे अनन्त के सत्य विवेक।
क्षमा हृदय को विस्मय कर रहा
पर नयन जिज्ञासा एक॥

क्या हम सब भी देख सकेंगी
यह स्वतन्त्रता का प्रासाद !
जब भारत का तृण-तृण-कण-कण
विहँसेगा होकर आजाद !

उस हिमालय के मस्तक पर
चमकेगा जब चमचम ताज।
अन्तरिक्ष से अवनी तल तक
होवेगा अपना ही राज॥

कन्या से नागा पर्वत तक
बर्मा से अफगानिस्तान।
एक राग जब गूँज उठेगा
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥"

"यह कैसी मृगतृष्णा रानी।
कैसा यह मायामय रूप !
कभी नहीं कगूरे देखती
पड़ी नींव में ईट अनूप॥

यद्यपि रहती ढकी किन्तु है
वही भवन का दृढ़ आधार।
उसके ही अनवरत त्याग का
रूप भवन होता साकार॥

इसी भाँति हे सबमगते।
कही नहीं जा सकती बात।
दिखलाई देगा क्या इस क्षण
यह स्वातन्त्र्य भवन साक्षात !

किन्तु भवन की नींव पड़ गई
मातु ! इसी से हो सन्तोष।
आने वाले पूरा करके
पावेंगे इससे परितोष॥

है स्वतंत्रता के मिलने में
अमर निशानी ! अभी विलम्ब।
अभी सपूतों के पौरुष का
लेना है माँ को अवलम्ब॥"

इतनी कह भविष्य की बातें
हुए जितेन्द्रिय हर्षित मौन।
सान्ध्य गीत था सुना-सुनाकर
खग-कुल हुआ विटप पर मौन॥

चली भवानी शीश नवाकर
चंचल घोड़े पर सविचार।
लौट पड़ी सखियों के सँग में
क्षण में नाले को कर पार॥



बाइसवी हुकार

चल पड़ा सूर्य उषा-गृह से
रक्तिम-आनन चमचमा रहा।
कर से भूतल के कण-कण को
वह द्रुतगति से था जगा रहा॥

था फैल गया नव ताप त्वरित
वन, उपवन, नदी, कछारों में।
छाया निदाघ का असह दाप
जल, थल, तृण अगम पहाड़ों में॥

जल उठा क्रोध की ज्वाला से
सागर, सरिता, सर वक्षस्थल।
रण करने को थरथरा उठा
तरु-तरु का नव-रक्तिम-दल-दल॥

क्रोधाग्नि धधकने लगी शीघ्र
मारुत की गति में हहर-हहर।
चल पड़ा घूमने व्योम धूल
जय-ध्वजा उड़ाता फहर-फहर॥

चल पड़ी देश बुन्देल का
ललनाएँ नव शृंगार किए।
सोने की थाली में पति की
पूजा का नव-उपहार लिए॥

पति का रण-साज सजाकर वे
चमचम करती तलवारों से।
मस्तक पर शुचि-पद धूल लगा
कहती थी वीर कुमारों से ॥

"हे नाथ! कभी न मुझे यह सिर
अरि-दल के सीसे वारों में।
हे प्राण! कभी न रुकें ये पद
विघ्नों के तप्त अँगारों में ॥

रचकर मुण्डों का नव पहाड़
चढ़ उसकी उन्नत चोटी पर।
लिख देना मेरे हे सुहाग!
वीरत्व-मान अरि चोटी पर ॥

शोणित के सागर पर तरणी
तिर चले वीर सम्मानों की।
गूँजे कण-कण में एक बार
फिर से गाथा बलिदानों की ॥

जीते जी कर रण सिंधु पार
छाती चत्तान करके आना।
मेरे सुहाग की लाली से
हे नाथ! पुन: आ लहराना ॥"

कहती थीं बहनें "हे भ्राता!
भाई का मान बढ़ा देना।
अरि सिर का रचकर मुण्ड माल
शङ्कर को मुदित चढ़ा देना ॥

खप्परवाली के खप्पर में
जीभर रिपु-शोणित भर देना।
निज चन्द्रहास की लपटों से
माता का सकट हर लेना॥

धमधम हिमनग के मस्तक पर
जय-मुकुट प्रसन्न चढ़ा देना।
यदि सम्मुख काल खड़ा हो तो
छाती में कुन्त बढ़ा देना॥

कहना उससे है भेंट यही
भारत के नव रणधीरों का।
कह देना उससे टेक यही
है भरतखण्ड के वीरों का॥"

माता कहती है वीर पुत्र!
तुम दूध कलंकित मत करना।
हँस-हँसकर तप्त अँगारों को
तुम फूल समझकर पग धरना॥

दुर्धर्ष अनल की लपटों को
पुष्पों की सुरभि समझ बढ़ना।
रिपु-दल के शस्त्र-प्रहारों को
सुमनों का भार समझ चढ़ना॥

सागर गो-पद सम छोटा है
यह समझो भर कोर-माल!
ऐसा धक्का देना जिससे
अरि तन में उठने लगे साल॥

परवशता का हो जाय अन्त
निर्ममता भी थरथरा उठे ।
निज जाति-धर्म का विजय-केतु
नभ मस्तक पर फरफरा उठे ॥

यश जलद गगन में छा जावे,
कड़कड़ा उठें युग का कड़ियाँ।
जननी की आँखों से पोंछो
तुम आँसू की अविरल लड़ियाँ ॥

पर ध्यान रहे हे कुल दीपक !
मानस के मेरे अचल प्राण !
तुमको करना है पुरखों को
गौरवमय – पावन अर्घ्यदान ॥

हम वीर देश की मातायें
हम वीर वेश की रानी हैं ॥
मेरा कहता है रोम-रोम
क्षत्राणी हैं, क्षत्राणी हैं ॥

जिसने अकबर की छाती पर
चढ़कर कटार थी चमकाई।
रण का डंका था बजा-बजा
अरि-कण्ठों पर असि दमकाई ॥

मेरा यह है बुन्देलखण्ड
मैं इसकी रक्षा कर लूँगी ।
यदि समय कहेगा तो माँ की
मुण्डों से झोली भर दूँगी ॥

दे-देकर बिदा जवानों को
ग्रीवा में डाली मालाएँ ।
चल पड़ीं धाम को मुदित वदन
माताएँ बहनें, बालाएँ ॥

चल चहुँ दिशों से आ आकर थे
जुट गए वीर रण सेनानी ।
सबके कर में लहराते थे
स्वातंत्र्य केतु जय-अभिमानी ॥

रानी बैठी अमराई में
हँस कहती थी सरदारों से ।
था ताप ले रहा रवि किरणें
तीखे भालों के धारों से ॥

चुप पत्ता-पत्ता सुनता था
यह रण सन्देश भवानी का ।
केवल अम्बर दुहराता था
जयघोष नए सेनानी का ॥

हे गाता के सच्चे सपूत
वीरों के पथ के अनुगामी ।
सबके उर में है बसा हुआ
गीतावाला अन्तर्यामी ॥

इसने ही इसे बताया है
वीरों की गति है धारों पर ।
यदि नभ भी आ टूटे तुम पर
तो रोको इसे कटारों पर ॥

यह हो है सबको हुला रहा
है कुन्तों में उसकी ज्वाला।
इसलिए धर्म के धागे में
रचनी है कर्मों की माला॥

यह है अन्तिम संग्राम आज
कुछ नयी बात बतलानी है।
फिर दूने बल से आगे यह
रणभेरी आज बजानी है॥

हे वीर कुँवर रघुनाथ सिंह!
सुत को निज हय पर बैठाओ।
इसके भविष्य के जीवन को
शत शत वत्सर तक फैलाओ॥

यदि जयलक्ष्मी ही रूठ जायँ
तो सुत का प्राण बचा लेना।
अरि से छिप दक्षिण भारत में
रक्षित इसको पहुँचा देना॥

यह कह कर राजभवानी ने
जननी का जय जयकार किया।
तृण-तृण कण-कण के मानस में।
वीरत्व भाव सचार किया॥

बज उठा शीघ्र रण-बाद्य वहाँ
घन घन अम्बर घनघना उठा॥
हथियारों की झनकारों से
पत्थर-पत्थर झनझना उठा॥

उस भीमनाद से क्षण में ही
तमाम भूमि थरथरा उठी।
नभ के मस्तक पर लहराती
वीरत्व-ध्वजा फरफरा उठी॥

कम्पित हो गूँजी अमराइ,
रवि का आनन दमदमा उठा।
हाथों में वीर सपूतों के
सब लौह शस्त्र चमचमा उठा॥

माँ की गोदी में उछल पड़े
शुव छोटी सी तलवार लिये।
उठ बैठे रुग्ण अशक्त शीघ्र
दुख की छाया का त्याग किए॥

हाथों में भरपा लिये विप्र,
हल थामे कृषक भुजाओं से,
ठिठके क्षण में पक्षी पथ पर
आहत हो ध्वनि के घावों से॥

रुक गया पवन ध्वनि का पथ दे,
सब दिग्दिगन्त भी काँप उठे।
रवि-किरणों की शुभ रज्जु बढ़ा
सारा भूतल वे नाप उठे॥

इस बीच अस्तबल से सुन्दर
आयी नूतन चमक-घोड़ा।
जो रूप, रंग या फुर्ती में
पहले घोड़े का था जोड़ा॥

फिर भी तोपों का चलता था
हुङ्कार धरा की छाती पर।
तम तोम धुएँ का छाया था
दिनकर की जलती छाती पर।।

थर रही दिशाएँ थीं धड़ धड़,
लड़ लड़ पत्थर थे टूट रहे।
सावन के घन के शर सम थे
तोपों से गोले छूट रहे।।

भीषण गोलों की रंचक भी
चिन्ता न भवानी करती थी।
शिव दूती का रीता खप्पर
हर-हर गति से वह भरती थी।।

नव हुजर सवारों का हमला
था चड़ाचीन बन्दूकों से।
जिसको झाँसी के वीरों ने
रोका कटार की नोकों से।।

रानी घोड़े को एड़ लगा
समरांगण को थर्राती थी।
चढ़ने को स्वर्ग सपूतों को
अरि सिर सोपान बनाती थी।।

तलवार किधर कब उठती थी
कब किधर छपाछप करती थी।
यह भी अरि-दल को ज्ञान न था
कब किधर लपालप करती थी।।

केवल इतना कह पाते थे
रानी आई, रानी आई।
तबतक सिर धड़ से अलग लोट
भू पर कहता रानी आई॥

सब तक घोड़े की टापों की
ध्वनि ही अरि दल सुन पाता था।
तबतक रानी का खड्ग तुरत
बन मृत्यु शीश पर आता था॥

दाएँ-बाएँ दो हाथों से
रानी थी रिपु सिर काट रही।
स्वातन्त्र्य भवन की नई नींव
थी शत्रु मुण्ड से पाट रही॥

मर गए लाल फुर्तीवाले
सब शूर शत्रु के वारों से।
अरि का सिर भी फिर लुढ़क पड़ा
रानी की दो तलवारों से॥

दिनभर का श्रान्त समीरण भी
घावों से था लड़खड़ा रहा।
शालिव के निकट में उसका
मानस भी था थरथरा रहा॥

रह गए चार दो अब वहाँ
संग्राम भूमि में सेनानी।
जिनको लेकर थी खेल रही
अरि का हर साँसों की रानी॥

उस ओर शत्रु दल में पन्द्रह
थे कड़ाबीन तलवार लिए।
आगे थे कुछ गोरे सैनिक
संगीनदार खरधार लिए॥

रानी ने पीछे मुड़ देखा
रघुनाथसिंह थे गरज रहे।
रिपु-दल का अवयव छाँट-छाँट
आगे बढ़ने से बरज रहे॥

फिर रानी दूने साहस से
दोनों कर की तलवारों से,
पथ लगी बनाने रिपु-दल में
पवि सम निज तीखे वारों से॥

संगीनदार संगीन लिए
भूतल पर सोते जाते थे।
निज शोणित से रंजित होकर
टेसू के सम लहराते थे॥

इस बीच लगी संगीन-हूल
रानी की छाती के नीचे
फिर भी रानी ने सुला दिया
उस अरि को पैरों के नीचे॥

बह रहा रक्त था तर, तर, तर
देश पर छा गई निराशा थी।
पर आँच न बाहर आई थी
[illegible] ही जय की आशा थी॥

रानी ने सोचा मैं भी अब
स्वातन्त्र्य नींव की ईंट बनी।
छा गई सजल-दृग के सम्मुख
वेदना निराशा घनी घनी॥

क्षण में फिर रानी गरज उठी
तलवार चमाचम चमकाती।
रणवाग दनादन छाँट छाँट
शोणित से रंजित लहराती॥

घोड़ा भी दूने साहस से
उड़ गया गगन की छाती पर।
टापों से घाव लगा करने
रिपु-दल के जय की छाती पर॥

रानी थी आगे निकल गई
साथी सब थे दाएँ बाएँ।
जयलक्ष्मी भी मुसकाती थी
उन वीरों के दाएँ दाएँ॥

पीछे पीछे दस घुड़सवार
गोरे बढ़ते ही आते थे
अपनी पैना तलवार-साथ
बन्दूकें सतत चलाते थे॥

इतने में गोली लगी एक
सहसा सुन्दर की छाती में।
मानों यह तीर लगा माँ का
युग की संचित सी थाती में॥

उस ओर शत्रु दल में पन्द्रह
थे कड़ाबीन तलवार लिए।
आगे थे कुछ गोरे सैनिक
संगीनदार खरधार लिए ॥

रानी ने पीछे मुख देखा
रघुनाथसिंह थे गरज रहे।
रिपु-दल का अवयव छाँट-छाँट
आगे बढ़ने से बरज रहे ॥

फिर रानी दूने साहस से
दोनों कर की तलवारों से,
पथ लगी बनाने रिपु-दल में
पवि सम निज तीखे वारों से ॥

संगीनदार संगीन लिए
भूतल पर सोते जाते थे।
निज शोणित से रंजित होकर
टेसू के सम लहराते थे ॥

इस बीच लगी संगीन-हूल
रानी की छाती के नीचे
फिर भी रानी ने सुला दिया
उस अरि को पैरों के नीचे ॥

बह रहा रक्त था सर, सर, सर
उस पर छा गई निराशा थी।
पर आँत न बाहर आई थी
[illegible] की जय की आशा थी ॥

रानी ने सोचा मैं भी अब
स्वातंत्र्य नींव की ईंट बनी।
छा गई सजल-दृग के सम्मुख
वेदना निराशा घनी घनी ॥

क्षण में फिर राना गरज उठी
तलवार चमाचम चमकाती।
श्वेतांग दनादन छाँट छाँट
शोणित से रंजित लहराती ॥

घोड़ा भी दूने साहस से
उड़ गया गगन की छाती पर।
टापों से घाव लगा करने
रिपु-दल के जय की छाती पर ॥

रानी थी आगे निकल गई
साथी सब थे दाएँ बाएँ।
जयलक्ष्मी भी मुसकाती थी
उन वीरों के दाएँ दाएँ ॥

पीछे-पीछे दस घुड़सवार
गोरे बढ़ते ही आते थे
अपना पैना तलवार-साथ
बन्दूकें सतत चलाते थे ॥

इतने में गोली लगी एक
बरछा सुन्दर की छाती में।
मानों यह तीर लगा माँ की
युग की संचित सी थाती में ॥

सो गई शीघ्र वह यह कहती
रानी की जय, रानी की जय।
नव स्वतंत्रता की तपस्विनी
रानी की जय, रानी की जय॥

रघुनाथ सिंह ने उसे उठा
कस लिया पीठ पर कपड़े से।
हन्ता को क्षण में सुला दिया
रानी ने असि के थपड़े से॥

क्षण में घोड़े की बाग मुड़ी
पड़ गया पवन से था पाला।
था वहाँ सोनरेखा का ही
बन गया दुर्गमय वह नाला॥

पीछा करनेवाले गोरे
अब पाँच बचे दिखलाते थे।
शोणित से रंजित द्रुतगति में
पिस्तौल चलाते आते थे॥

रानी का वह अड़ियल घोड़ा
दो पैरों पर हो गया खड़ा।
कसते कसते भी उसने था
दोनों पग भू पर दिया गड़ा॥

गोरे इतने में पहुँच गए
रानी उलझन में पड़ी रही।
बाएँ कर की तलवार फेंक
कर से अयाल धर अड़ी रही॥

इतने में गोली लगी एक
बायीं जंघा थरथरा उठा।
शोणित का फव्वारा रानी के
जंघे से फरफरा उठा॥

दुर्दर्प अनल सम क्रोधानल
रानी के मुख पर दमक उठा।
बैरी सिर भू पर लुढ़का कर
दायें कर सायक चमक उठा॥

चारों गोरों से घिरकर भी
एकाकी रानी लड़ती थी।
उर से, जघ से शोणित की
कल कल परनाली बहती थी॥

इसकी उसको चिन्ता क्या थी
सिर पर केसरिया बाना था।
स्वातंत्र्य भवन के दीपक को
मरघट में सतत् जलाना था॥

मँझधार पड़ी जग की नौका
कर-बल से अमा बढ़ाना था।
स्वातंत्र्य सिन्धु के शुभ तट को
आगे बढ़ उसे दिखाना था॥

पावन सन्देश धरातल पर
संघट में अमा सुनाना था।
निज उर का देकर नव प्रकाश
नरोन्द्र-कुसुम बिखराना था॥

अरि-दल को हृदय शिला पर भी
असि से गाथा लिख देनी थी।
इस महायज्ञ की सुरभि अभी
जन जन-उर में भर देनी थी॥

घोड़ा अड़ियल था अड़ा रहा
रानी इससे कुछ बढ न सकी।
दुस्तर की छाती पर प्रस्तर
दहला कर भी वह चढ न सकी॥

उस नियति नटी के नाटक से
कोई भी जग में बच न सका।
उर की स्वर्णिम आकांक्षाएँ
रंजित दिल पट पर रच न सका॥

छिपकर पीछे से वैरी ने
रानी पर असि का वार किया।
सिर का बायाँ तट सिर से चट
शोणित से रंजित काट दिया॥

उसके झटके के साथ साथ
रानी का बायाँ नेत्र गिरा।
अब उधर हमारी सेना की
आशा पर पाना आज फिरा॥

इस पर भी समर भवानी ने
गोरा धड़ भू पर लिटा दिया।
कितने लोहित रवेतांगों को
कर ढेर धरा पर बिछा दिया॥

विकराल कालिका सी रानी
झटपट घोड़े से उतर पड़ी।
असि का कौशल दिखलाने को
भूतल पर आकर हुई खड़ी॥

वह टूट पड़ी फिर गोरों पर
तन शोणित से हो गया लाल।
था रोम-रोम से चण्डा के
वह धधक रहा था क्रोध-ज्वाल॥

अब दो गोरे रह गए शेष
दुस्तर रानी फिर जूझ पड़ी।
या क्षुधित सिंहिनी ■ अपने
शिशु-हन्तक पर हा टूट पड़ी॥

लपलप करती असि-नागिन ने
गोरे मुण्डों को चाट लिया।
उन दोनों श्वेत कबन्धों से
पथ-मार्ग रक्त का पाट दिया॥

उन दोनों श्वेत कबन्धों पर
रानी पद रखकर खड़ी हुई।
या शुम्भ निशुम्भों के तन पर
दुर्गा हो तनकर खड़ी हुई॥

स्वातन्त्र्य भवन की देवी का
रानी ने झुककर नमन किया।
गुरु मोरपन्त के मंत्रों का
मानस में फिर से मनन किया॥

गिर पड़ी हाथ से थाल – सखी
जो अब तक सँग में खेली थी ।
जिसने रानी की सब विपदा
अपने ही ऊपर झेली थी ॥

रानी माता की जय कहती
वसुधा पर थी लड़खड़ा चली ।
रवि की किरणें हो प्रभाहीन
क्षितिजांचल पर हड़बड़ा चली ॥

रघुनाथसिंह ने आगे बढ़
गिरने से उसको बचा लिया ।
मूर्छित रानी को धीरे से
अपने घोड़े पर बिठा दिया ॥

सुत सिसक-सिसक कर रोता था
मुख स्नेह-नीर से धोता था ।
माता के अतुलित मानस में
अनुभाव-बीज वह बोता था ॥

उस कुटिया पर जो भीहत हो
तम-पट में छिपती जाती थी
चल पड़े सभी रानी को ले
आँखें आसू बरसाती थीं ॥



महाप्रस्थान

निस्सम शोणित से रञ्जित मुख पड़ा हुआ था लाल।
फूट फूटकर बिलख रहा था पाकर भूमि पर लाश॥
आगे आगे बल्गा पकड़े घोड़े का रघुनाथ।
चले जा रहे थे द्रुतगति में घोर व्यथा के साथ॥

शोकाकुल डगमग पग रखता चलता मन्द समीर।
रव भी तरु किसलय अधरों पर हान लगा अधीर॥
मूर्च्छित मन रानी का हय, पर सिर पर असि का वार।
जिसके ऊपर बिलस रहा था दुर्दिन का गुरु भार॥

श्रम मकारा-रञ्जु शोणित लाञ्छित अस्ताचल मुख रङ्ग।
खिंचने लगा भानु के मुख पर चिता का नव रङ्ग॥
कहने लगा वीर सेनानी लख रवि का प्रस्थान।
इधर भवानी थे पीड़ा से मूर्छ रहे थे प्राण॥

"जाते हो दिनमणि! अम्बर का धार-धार छोड़।
हँसते हुए कमल-वन से क्यों ऐसा नाता तोड़?
उदय हुए थे मन में लेकर कितना बड़ा उभार।
और जा रहे हो अब जग का करके धूमिल राह॥

अथवा अम्बर-पथ विश्व के शुभ दो हो आधार।
सोचो तनिक धरा पर जग का चलता जो व्यापार॥
मान-ध्यान जगाया जग को नव था बड़ा उल्लास।
वीर-देश के मानस में था हँसता विजय प्रकाश॥

इन सब को जो भर दिखलाकर रानी है अब मौन।
ऐसा मंत्र फूँकनेवाली है बतुरा कौन!
अब न समय है अधिक देर तक करने का सुविचार।
नश्वरता के लिये व्यर्थ है करना हाहाकार॥"

इतना कहकर गंगाजल ले बाबा गंगादास।
पहुँच गए रानी के मूर्छित मुख मण्डल के पास॥
झुककर देखा अभी मन्द गति में चलती है श्वास।
विकल कर रही थी रानी को गंगाजल की प्यास॥

कान रुके थे सुनने को गीता का चिर उपदेश।
प्राण रुके थे कहने को बस अन्तिम संदेश॥
खुले नेत्र देखा सम्मुख बाबा का पावन वेश
'नैन दहति पावक' का गूँजा मधुमय उपदेश॥

आगे रानी मौन हो गई कह न सकी कुछ बात।
अधर हिल रहे थे केवल, था उर में ममाघात॥
सोच रही थी मन ही मन में करके आँखें बन्द।
जीवन-दीपक का प्रकाश था होता जाता मन्द॥

"अमर शौर्य का अम्बर में फहरेगा झण्डा-निशान!
क्या स्वातन्त्र्य भवन का फिर से होगा प्रभु! उत्थान!"
पग पग धरता वर फिर जन हित होगा युद्ध पहाड़!
क्रूर शत्रु-दल कब उड़ेगा सुनकर सिंह-दहाड़!

जाग उठेगा जन जन मन में गाथा जिसकी विशेष!
जाग उठेगा उर उर में हर सब मानव हैं एक!
गूँज उठेगा कण कण में है जिसका पूर्ण संदेश!
चमकेगा सूरज न भला क्या गगन में बर जग!

पहुँच गए रघुनाथसिंह ले रानी को तत्काल।
जिसका सारा तन मानस के शोणित से था लाल॥
लोहित वर्णों में अम्बर पर अंकित था गुण-गान।
धीरे धीरे शून्य हो चले जग के विविध विधान॥

लौट रहे थे खग नीड़ों को भर लयवती बढ़ान।
तरु तरु का कम्पित दल दल था तम में होता म्लान॥
वासों के झुरमुट का मरमर रव होता था शान्त।
उन्नत-तरु-शिखरों पर रवि की किरणें था कुछ क्लान्त॥

शाल-धाम में अभी गूँजता था सन्ध्या का गान।
मृगछाला पर लगा हुआ था अभी यती का ध्यान॥
वीर कुँवर रघुनाथसिंह ने कर से शीघ्र सँभाल।
सुला दिया अवनी-अचल पर रानी को तत्काल॥

ध्यान मग्न हो गया यती का देखा दृश्य विपन्न।
रानी रेशम के अञ्चल पर थी अब मरणासन्न॥
बोला 'हे भारत के गौरव! क्यों बैठे हो मौन?
अवनी-तल पर इस सुकीर्ति का भागी है अब कौन?

देख रहे हो क्या संसृति की मृगतृष्णा है घोर?
रानी सबको बता रही है जीवन का पथ घोर?
यह भारत की ललनाओं का है पावन-आदर्श।
इसके ही अनुकरण मात्र से होवेगा उत्कर्ष॥

अमर-कांति के लिए विहँसकर हो अन्तक सम्मान।
तलवारों की धारों पर भी हो छाती उत्तान॥
गूँजे फिर घाटी-घोटा में जय-स्वदेश का गान।
नभ में फहरे उर-शोणित से रंजित अरुण निशान॥

इन सब को जी भर दिखलाकर रानी है अब मौन।
ऐसा मंत्र फूँकनेवाला है बतुआ कौन?
अब न समय है अधिक देर तक करने का सुविचार।
नश्वरता के लिये व्यर्थ है करना हाहाकार॥"

इतना कहकर गंगाजल ले बाबा गंगादास।
पहुँच गए रानी के मूर्छित मुख मण्डल के पास॥
झुककर देखा अभी मन्द गति में चलता है श्वास।
विकल कर रही थी रानी को गंगाजल की प्यास॥

कान रुके थे सुनने को गीता का चिर उपदेश।
प्राण रुके थे कहने को कथनीय अन्तिम संदेश॥
खुले नेत्र देखा सम्मुख बाबा का पावन वेश
'नैन दहति पावकः' का गूंजा मधुमय उपदेश॥

आगे रानी मौन हो गई कह न सकी कुछ बात।
अधर हिल रहे थे केवल, था उर में मर्माघात॥
साध रही थी मन ही मन में करके आँखें बन्द।
जीवन-दीपक का प्रकाश था होता जाता मन्द॥
"अमर शौर्य का अम्बर में फहरेगा स्वत्व-निशान!
क्या स्वातन्त्र्य भवन का फिर से होगा प्रभु! उत्थान!"
पग पग धरती पर फिर जन-हित होगा कुटिल प्रहार!
क्रूर-शत्रु-दल काँप उठेगा सुनकर सिंह-दहाड़!

जाग उठेगा जन जन मन में गंगा विमल विवेक!
जाग उठेगा घर घर में हम सब मानव हैं एक!
गूँज उठेगा कण कण में है सिद्ध पूज्य यह देश!
चमकेगा हिम भवन के आँगन में दर-वेश!

डाला यति ने रानी के मुख में गंगा का नीर।
जिसके लिये विश्व में केवल अब थे प्राण अधीर॥
उधर प्रतीची के आँचल पर रवि-मुख हुआ मलीन।
जीवन – दीप इधर रानी का हुआ अ'ध – तम लीन॥

देख कुटी को कहा यती ने "सुनो देश-सम्मान।
लेकर इसका सारी लकड़ी अन्तिम करो विधान॥
अब न रही इसकी सार्थकता, नहीं जगत में स्थान।
यही हमारा है रानी की पूजा का सामान॥"

क्षण में रानी विहँस उठी पा पावक की मधु गोद।
अमर लोक सन्देश सुनाने चला धूम्र सविनोद॥
चला सुनाने कण-कण को फिर वायु अमर - उपदेश।
तन, मन, धन सर्वस्व चढ़ाकर, साजो उज्ज्वल वेश॥